मु० औज़ोव

किरण की ओर



मु॰ औज़ोव

किरण की ओर

लघु-उपन्यास

प्रगति प्रकाशन मास्को

अनुवादक—मदन लाल 'मधु'
चित्रकार—य० इल्यूमचेंको

МУХТАР АУЭЗОВ

СТЕПНОЙ ТАБУНЩИК

Повесть

На языке хинди

बड़े ने छोटे भाई को हाथों में ऐसे उठा लिया मानो व बच्चा हो और झटपट बिस्तर ठीक करती हुई अपनी पत्नी से कहा:

"इस में तो न हाड़ है न मांस। बिल्कुल कांटे-सा है हल्का-फुल्का, रूई के गोले जैसा. ओह, क्या हाल कर डाला है उन्होंने इस बांके नौजवान का!"

बिस्तर पर—झाड़ के झोपड़े में मिट्टी की कच्ची दीवार के साथ बिछा हुआ तीन-चार तहवाला रूई का गद्दा बीमार को बहुत सावधानी से दायीं करवट लिटा दिया गया

बड़ा भाई जब तक उसे हाथों में उठाये रहा, उन्हीं कुछ क्षणों में रोगी बदहाल हो गया, उसे सांस लेने में तकलीफ होने लगी और उसने अपने बेजान होंठों को बड़ी मुश्किल से हिलाया-डुलाया। भाई और भाभी ने उसकी बात सुनने के लिए उसके मुंह के पास अपने कान लगा दिये। फिर भी शब्दों के बजाय उसके होंठों की हरकत से ही उन्होंने उसकी बात का अनुमान लगाया। उसने कहा:

"मस्जिद घोड़ा—जंग हवा में रोना"...

"मरियल पति—जैसे चलती-फिरती छाया," दुख से गहरी सांस लेते हुए नारी ने कहावत को पूरा किया।

बड़े भाई का नाम था वाम्नीगुल और छोटे का तेक्तीगुल। नारी थी—हातशा।

काली-काली मूछें, चौड़ी छाती और मजबूत कंधे—ऐसा था वाम्नीगुल। वह सिर झुकाकर बीमार के पास बैठ गया। अभी पिछली पतझर में ही तेक्तीगुल का गूरमाश्रो जैसा डील-डौल देख लोग दांतों तले उंगली दबाकर रह जाते थे। वह अपने भाई से सिर भर ऊंचा, हट्टा-कट्टा और तगड़ा था। पर अब कम्बख्त बीमारी ने उसकी जान ही निकाल ली थी। नौजवान की ताकत ऐसे ही जाती रही थी, जैसे वटे पाव में से खून।

पहले तो नंगी चट्टान भी उसे नर्म लगती थी और अब गद्देदार बिस्तर भी सख्त महसूस होता था। सीस-सेस निकालता रहता और बार-बार बिस्तर ठीक करने को कहता। उसे हाथों में उठा लेना तो मानो बच्चों का खेल था। मगर पहले तो कोई उसे जमीन से हिला तक नहीं पाता था।

बरबस किशोरावस्था के उस भयानक साल की याद आती है, जब आज की भांति ही वाम्नीगुल को अपने छोटे भाई को सादवर ले जाना पड़ा था। तब बड़े भाई की उम्र थी सोलह और छोटे की दस साल। दावानल की भांति टाइफाइड ने सारी स्तेपी, पशुओं के साथ गांवों को सा दबाता था। मां-बाप एक ही दिन चारपाई पर पड़े और फिर एक ही दिन दुनिया से चल बसे—मा गुजरे को।

और बाप रात को। दोनों भाई गांव से भाग निकले और जैसा कि मरते समय पिता ने नसीहत की थी, जिधर पांव ले गये, उधर ही चलते गये। जब छोटे भाई की टांगों ने जवाब दे दिया, तो बड़ा भाई बची-बचायी ताकत बटोरकर उसे अपनी पीठ पर लाद ले चला ताकि वे गांव से अधिकाधिक दूर हो जायें। तब खाप्नीगुल ने भाई की जान बचाई थी, वह उनका पीछा करते हुए छूत के रोग से उसे दूर भगा ले गया था। मगर अब लगता है कि वह उसकी रक्षा करने में असमर्थ है..

सेवलीगुल को बेचैनी सताती रहती थी, जवानी के दिनों की नहीं, मौत की बेचैनी।

"जड़ से काटे हुए पौधे में हरे पत्ते नहीं आते," यह निर्जीव, धुंधली-धुंधली और डरावनी-डरावनी आंखों से कभी भाई और कभी भाभी की ओर देखते हुए यही रटता रहा। "यह सब कुछ हमारी कम्बख्त गरीबी का, हमारे अनाथपन का नतीजा है। रोगों ने नहीं, गरीबी ने मुझे मार डाला है, भाई। कैसे कटेगी तुम्हारी, मेरे बिना?"

उसके होंठों में बल पड़ गये और मानो उसकी आत्मा में उमड़ता-घुमड़ता रहनेवाला तूफान बाहर आ गया.

"ओह, काश मैं बदला ले सकता... अपनी मौत का नहीं, अपमान का..." वह बुदबुदाया और उसने शोक भरा बेबसी की सिसकी भरी। दीवार की ओर मुंह फेरकर वह बूढ़े-खूसट की तरह खांसने लगा।

भाभी हाजा अपने को बस में न रख सकी। उसकी आंखें छलछला आईं और वह कह उठी:

"कमीने न हों तो! हाथ-पैर टूट जायें कम्बख़्तों के! मारते रहे, मारते रहे... बुरा हाल कर डाला इसका मार मार कर... फिर कुछ तो दिया होता बदले में, कोई मरियल-सा बकरा ही। कोई भीख ही दे देते... बीमार को खिलाने-पिलाने के लिए।"

वास्तीगुल नपी-तुली बात करनेवाला आदमी था। "भी... ख?" उसने घृणा और व्यंग्य से हंसकर कहा। उसकी घनी और काली मूंछों के सिरे नीचे हो गये।

हातशा पति की बात समझ गई। उनके दुश्मनों के दिल में न तो दया थी और न परोपकार की भावना। हाथ से कुछ देना तो दूर—वे तो उसे एक नजर देखने को भी तैयार नही थे। तेक्तीगुल के साथ ऐसा जुल्म करनेवाले जानते थे कि इस हड्डियों के ढेर, इस रोगी को खाने-पीने को कुछ देने का मतलब होगा उसके सम्मुख अपने अपराध को स्वीकारना... अगर तेक्तीगुल भला-चंगा नहीं होगा तो स्तेपी के प्राचीन कानून के मुताबिक उन्हें हत्या का मुआवजा चुकाना होगा। यही था वह, जिससे उन्हें डर लगता था।

वास्तीगुल को उस दिन से लेकर जब उसके देखते-देखते ही मां-बाप की आंखें बन्द हुई थीं, अब तक के अपने सारे जीवन में एक भी ऐसा दिन याद नहीं था, जब अमीर लोगों ने न्याय से काम लिया हो।

उस भयानक वर्ष में टाइफाइड के चंगुल से तो ये दोनों बच निकले, मगर दुर्भाग्य के हाथों से नहीं बच पाये। काफी भटकने-भटकने के बाद उन्हें दूर के रिश्ते के मामों के घर

में सिर छिपाने की जगह तो मिल गई, मगर किस्मत ने साथ नहीं दिया। दोनों छोकरे धनी कोजोबाक वंश के साथ में कड़ी मेहनत का जीवन बिताने लगे। कोजोबाक वंश के लोग युर्गेन्सक क्षेत्र में भटकते रहते थे। पिछली पतझर में इन दोनों को कोजोबाक परिवार के सबसे छोटे भाई साल्मेन की सेवा करते हुए बीस वर्ष हो गये थे। बड़ा ही कठोर, बहुत ही संगदिल था यह मालिक!

नौकरी के सालों में बाल्टीगुल ने काफी इज्जत पा ली थी – वह घोड़ों के झुण्डों का बड़ा चरवाहा बन गया था, चरवाहों में ऊंचा दर्जा पा लिया था। हां, यह सही है कि धनी नहीं हो पाया था। उसकी जगह उसका मालिक – साल्मेन – जरूर मालामाल होता जाता था। कुशल बाल्टीगुल ने स्तेपी में बाई के ढेरों घोड़े, बढ़िया और मजबूत नसल के सैकड़ों पशु पाले।

छोटे भाई तेस्तीगुल के साथ, जो घोड़ियों को दुहता था, बाई बहुत बुरी तरह से पेश आता। साल पर साल गुजरते गये, जवानी बिना खुशियों के आई और वैसे ही चली गई, मगर तेस्तीगुल की जिन्दगी जैसी थी वैसी ही रही। दिन को वह घोड़ियां दुहता और रात को भेड़ों की रखवाली करता।

बाल्टीगुल की किस्मत ने उसका साथ दिया – बाई ने उसकी शादी भी कर दी। पड़ोसी गांव के चरवाहे की बेटी हालसा उसकी बीवी बन गई, वह भी अपने पति के समान बाई साल्मेन, उसकी बीवी और मां की सेवा करने

लगी। वाल्गीगुल ने कोई दस वर्षों में जो कुछ कमाया था, वह सभी इस शादी की नज़र हो गया। मगर यह करता भी तो क्या, बाई की ऐसी ही इच्छा थी। मगर तेवर्नीगुल तीस वर्ष का हो गया था और अभी तक कुंआरा ही था।

बड़ी धाक थी इन दोनों भाइयों की अपने इर्दगिर्द के इलाके में। दिलेरी और जवामर्दी के लिए बड़े मशहूर थे वे। बाई को इनसे एक और भी खास फ़ायदा था।

कोजीबाक वंश धनी था और इसलिए बहुत लालची भी, ताकत के नशे का दीवाना और ऐसा कि जिसकी भूख कभी मिटे ही नहीं। कोजीबाक वंश के लोग एक ज़माने से "बारिम्ता" —यानी अपने जैसे लुटेरों और प्रतिद्वन्द्वियों पर धावा बोलने और उनके जानवर भगाने के लिए विख्यात थे। इस मामले में वाल्गीगुल और तेकीगुल बेमिसाल थे।

इन दोनों को काले-काले मोटे सोटे थमा और बढ़िया घोड़ों पर चढ़ाकर गुप्त धावे बोलने के लिए भेज दिया जाता। दोनों भाई बाई का हर हुक्म बजाने को तैयार रहते और जहां यह भेज देता, वहीं चल देते।

इनके मालिक माल्कन का बड़ा भाई गार्ट अपने इलाके का हलकेदार बनने का बहुत ही इच्छुक था और इसी लिए वह लोगों में फूट के बीज बोता रहता था। वह अपने इलाके में दल बनाता, उनमें दुश्मनी की आग भड़काता और इस तरह अपना उल्लू सीधा करता। सोटों की चोटों से [illegible] यानी जवानों की टुकड़ियां टूटतीं, बाई गार्ट हलकेदार

के मोहल्ले का मजा उड़ाता और बाई माल्मेन के पशुओं के झुण्ड और बढ़ जाते।

दूसरे धर्मों के नौजवान बाल्तीगुल और तेवर्तीगुल से डरते, उनकी ताकत से ईर्ष्या करते :

"ये तो आदमी नहीं – सट्ट हैं, बड़े काले सट्ट..."

ऐसा भी होता कि इनकी खिल्ली उड़ाई जाती :

"ये तो नौकर नहीं, दास हैं . दास-बधु हैं।"

ख्याति नहीं, कुख्याती, नेकनामी नहीं, बदनामी कमाई थी इन्होंने। परायों की तो खैर, बात ही अलग रही, अपने ही गाव की बड़ी-बूढ़ियां और बच्चे भी खुसुर-फुसुर करते हुए कहते :

"चले सड़ने को हमारे मुर्गा, आदत के अनुसार... लौटेंगे पर अपने रात को कर लूट-मार.."

मगर उन्हें तो बस एक ही बात की चिन्ता थी कि बाई खुश रहे! बाई की छाया में बाई की इच्छा ही भगवान थी।

साल-दर-साल, जाड़े और गर्मी में कोज़ोबाय वंश के लोग अधिकाधिक मोटे होते जाते और उनका मालमत्ता बढ़ता जाता। यों ही तो उनकी सेवा नहीं करते थे बाल्तीगुल और तेवर्तीगुल! करमाले-बंधुओं के मोटे थे भारी-भरकम, बड़े लम्बे-तगड़े, हर दिन में बहुत गर्म-गर्म। बोझ ढोते और ढोते थे, मगर तब भी वे न तो कभी शिकवा-शिकायत करते और न शब्द से इनकार।

बाई माल्मेन उन्हें कुछ भी नहीं देता था। बाई और

भाइयों के बीच कभी वह करारनामा भी नहीं हुआ था, जो स्तेपी में प्रचलित था। इस करारनामे के मुताबिक एक खास धर्म में चरवाहों को कुछ निश्चित पशु और कपड़े आदि देने की व्यवस्था थी. . सारसेन के यहां इस तरह के बंधनों की कोई गुंजाइश नहीं थी। क्या भाई अपने दास का बाप और शुभचिंतक नहीं है? तिस पर वे तो रिश्तेदार भी हैं, बेशक मां के वंश की ओर से ही। रिश्तेदारों को मजदूरी नहीं, उपहार दिया जाता है।

इसी लिए तीस वर्ष का हो जाने पर भी तेक्तीगुल के पास कुछ भी ऐसा नहीं हो पाया था, जिसे वह अपना कह सकता। यार्न्तीगुल और हातगा की हालत उससे कुछ बेहतर थी .

छोटा-सा पुराना खेमा, तीन-चार घोड़े, दर्जनेक भेड़ें— बस इतनी ही थी इनकी कुल जमा-पूंजी। इन तीन शक्तिशाली और चतुर व्यक्तियों ने अनेक वर्षों तक जोश और मेहनत से खून-पसीना एक कर और भारी जोखिम उठाकर बस यही कुछ कमाया था।

फिर भी खुदा का शुक्र होता अगर अमीर लोग इन्साफ करना जानते, अगर उनके सीने में पथरीला दिल न होता।

पिछली पतझर की एक बरसाती रात की बात है। मेंह [illegible] रही थी, मानो [illegible] रहा था कि एक भारी मुसीबत की बिजली गिरी। रात भर में चीख-पुकार, रोना-धोना और गाली-गलौज ही सुनाई दे रहा था। इस समय यार्न्तीगुल [illegible] से घोड़ों के झुण्डों की [illegible]

रहा था। बाई साल्मेन चीखता-चिंघाड़ता, ऊंट की तरह गुस्से से थूकता और जो भी सामने आ जाता, उसी पर कोड़े बरसाता हुआ गांव में इधर-उधर भागा फिर रहा था। हातशा बुझे हुए चूल्हे के पास पड़ी हुई आंसू बहा रही थी और तेक्नीगुन का नाम ले लेकर ऐसे विलाप कर रही थी मानो वह इस दुनिया से चल बसा हो।

"कहां है वह?"

"ख़ुदा जाने..."

"ज़िन्दा है या नहीं?"

"ख़ुदा जाने..."

ज़ाहिर है कि तेक्नीगुन था तो स्तेपी में ही। हुआ यह कि बवंडर के कारण भेड़ों का रेवड़ इधर-उधर बिखर गया और वे गांव से दूर भाग गईं। तेक्नीगुन उनके पीछे नहीं गया और जब बाई कोड़ा लिये हुए भागा भागा, तो ज़िन्दगी में पहली बार वह अपने पर काबू न रख पाया और उसने बाई के चर्बी से फूले हुए मुंह पर ही यह कह दिया:

"देख रहे हैं न कैसी भयानक रात है... और मेरे तन पर न कपड़े हैं, न पैर में जूती। बस, यही एक चोगा है और वह भी जगहों से फट-फट गया है, छेद ही छेद हुए पड़े हैं इसमें... तन ढंकने के लिए कुछ पुराने-धुराने कपड़े ही दे दीजिये।"

साल्मेन ने तो ऐसी बात सुनने की कभी आशा ही न की थी। उसे तो मानो भारी धक्का लगा।

"भेड़ें मर जायेंगी .. बहुत बड़ा रेवड़ है। और तुम हो कि मोदेबाजी कर रहे हो?"

"मैं आपकी मिन्नत करता हूं...दया कीजिये..."

"*कुत्ते का पिल्ला! अपनी चमड़ी की फिक्र पड़ी है इसे!*"

तेरनीगुल ने ऐसे ही बुरे-बुरे अन्दाज से मजाक कर दिया

"बस यही एक तो है मेरे पास, सो भी आखिरी..."

"तो कोई बात नहीं, मैं एक की तीन बना देता हूं।"

बाई का इशारा पाते ही उसके पांच जवान तेरनीगुल पर टूट पड़े, उन्होंने उसे जमीन पर गिरा दिया और खुद बाई पागल की भांति बूटों से उसकी छाती पर ठोकरें मारने लगा। उसके बाद उसे गोली से उड़ा दिया। तेरनीगुल ने कोई हील-हुज्जत न की। वह शर्म से पानी-पानी होता हुआ चल दिया और जाते-जाते अत्यधिक हताशा में उसने केवल इतना कहा:

"पाप तुम्हारे सिर चढ़ेगा..."

बाई ने लाल-पीला होते हुए पीछे से ढेर-सारी गालियां बक दीं।

तेरनीगुल को एक नजर देखते हुए भी लोगों का कलेजा कांप जाता था। बाई के बूटों की ठोकरों से उसका चोगा तार-तार हो गया और चीथड़े ठीक वैसे ही लटकने लगे थे जैसे ध्वज फटकर उड़ रहे हों। लेकिन लोग चुप्पी साधे रहे और बाई कोड़े से हवा को चीरता हुआ चीखता रहा...

तेवतीगुल एक घूसा मारकर माल्मेन को दूसरी दुनिया में पहुंचा सकता था, मगर यह बात उसके दिमाग़ में ही नहीं आई। यह तो उसे तभी सूझी, जब वह ख़ुद मौत के किनारे जा पहुंचा था।

बास्तीगुल ने हातशा से कहा कि वह घोड़ों के झुण्डों पर नज़र रखे और ख़ुद घोड़ा दौड़ाता और भाई को पुकारता हुआ स्तेपी की ओर चला गया। उसने इर्दगिर्द के टीलों और नालों का चक्कर लगाया, भेड़ों को घेर लाया, मगर सुबह होने तक तेवतीगुल को नहीं खोज पाया। आख़िर जब वह मिला और उसने उसे घोड़े पर चढ़ाया और अपने तन की ओट कर उसे आंधी-पानी से बचाया, तो तेवतीगुल न ज़िन्दा था, न मुर्दा।

हातशा घोड़ों को वश में न रख पाई। तूफ़ान ने घोड़ों को ऐसे बिखरा दिया मानो वे भेड़ें हों। और जैसे ही भाई गांव में दिखाई दिये, वैसे ही उन दोनों को मालिक की बड़ी सख़्त सज़ा का मज़ा चखना पड़ा। छोटा भाई बेहोश था, सरसाम की हालत में बड़बड़ा रहा था और ऐसी दशा में ही उसकी ख़ूब पिटाई की गई। बड़ा भाई उसकी रक्षा नहीं कर पाया। जो कुछ भी हाथ में आ गया, उसी से भाइयों की पिटाई की गई, निर्दयता और निष्ठुरता से, मानो वे घुड़चोर हों।

इस मार के बाद भाई माल्मेन के यहां से भाग गये। वे कोशिशों के साथ ही अपनी बची-खुची उजड़-पुजड़ी लेकर स्तेपी के अन्दरूनी हिस्से में भाग गये और उन्होंने घर-बार के

जाड़े वाले उस पुराने झोंपड़े में ही जाकर पनाह ली, जिसे बीस वर्ष पहले छोड़ कर भागे थे।

मगर उनके साथ ही साथ मां-बाप के घर में लुकी-छिपी मौत भी आई, वैसे ही जैसे कभी टाइफाइड आया था। मौत आकर तेरतीगुल के सिरहाने खड़ी हो गई।

जवान ने ऐसी चारपाई पकड़ी कि फिर उठा ही नहीं। जाड़े भर उसे ऐसे ज़ोर की खूनी खांसी आती रही कि उसकी आंतें बाहर निकलती प्रतीत होतीं। तेरतीगुल गाढ़ा-गाढ़ा खून थूकता रहता और खून के जमे हुए टुकड़ों के साथ-साथ ही उसकी ताकत भी निकलती जाती।

पहले वह कभी किस्मत को भला-बुरा नहीं कहता था, कोसता नहीं था, मगर अब रात भीत पर सारा दिन बुरी तरह पीटे गये पिल्ले की भांति कूं-कूं करता रहता। वह किस्मत को इसलिए नहीं कोसता था कि उसने अपनी जिन्दगी में कोई सुख-सौभाग्य नहीं देखा था, न बीवी मिली थी, न बच्चे हुए थे, इसलिए भी नहीं कि वह मरना नहीं चाहता था, बल्कि इसलिए कि अपने अरमान का बदला नहीं ले पाया था। तेरतीगुल जवानी में ही बहुत उदासमना, बहुत ही सीधा-सादा था, झटपट लोगों की बात मान लेता था। और अब तो मानो मृत्यु का भूत उसकी आत्मा में आकर बस गया था।

जाड़े में जब बर्फ़ पड़ी, तो हजरत की बात मानकर बाहीगुप गाल्तिन के भाई शाह के पास गया। वह

निष्कपट मन और दबी-दबी जबान से उसके पास शिकायत करने गया।

साट ने बहुत धैर्य से उसकी बातें सुनीं और ऐसे विस्तारपूर्वक उसे उत्तर दिये मानो अदालती कार्रवाई हो रही हो:

"तुमने कहा कि भूखों मरते हो? यह अच्छी बात है कि तुमने मुझसे कुछ छिपाया नहीं। पर गाल्मैन के यहां तुम लोग भूखों नहीं मरते थे? तुमने कहा कि वह मौत के मुंह की ओर बढ़ता जा रहा है? अच्छी बात है कि तुम किसी तरह की धूर्तता नहीं कर रहे हो। मगर जिसकी हत्या कर दी जाती है, वह फौरन मर जाता है और जिसकी पिटाई की जाती है, वह कभी नहीं मरता! उसके हाथों तुम्हारी भी थोड़ी-बहुत मरम्मत हो गई थी, मगर तुम जिन्दा हो... तुमने कहा कि वह बीमार पड़ा है? हां, यही तो है हकीकत और सच्चाई। मगर तुम तो जानते हो कि यह बीमारी बड़ा बुरा होती है! हममें से कौन इस बीमारी के पंजे में नहीं आया? कौन इससे नहीं डरता? मेरी और गाल्मैन की पत्नी भी तो बहुत सुख-चैन का जीवन बिताती थी, दूध-घी में नहाती थी, मगर मरी तपेदिक से। इसके लिए तुम किसे कसूरवार ठहराओगे? गाल्मैन को या मुझे? या फिर अपनी बीवी हाला को, जो अल्लाह को प्यारी हो गयी हमारी मां की निन्दक और ढोंगिन कहाती थी? अल्लाह से तो कुछ छिपा नहीं है, तुमने मुझे यह कुछ कहने के लिए मजबूर किया है, तो

मुझे नहीं कहना चाहिए था। मगर तुम्हें ऐसी बातें कहने की जुर्रत ही कैसे हुई, किसने तुम्हें ऐसी पट्टी पढ़ाई है कि जो कुछ खुदा दे जाता है तुम इनसान से उसे लौटाने के लिए कहते हो?"

भाट ने वाल्तीगुल को कुछ भी कहने-सुनने का मौका न दिया और अपने घर से चलता कर दिया। वाल्तीगुल मन ही मन कड़वे घूट पीता और हताश तथा अपने पर कुढ़ता हुआ वहां से चला गया।

बसन्त के शुरू में ही सेल्तीगुल इस दुनिया से चल बसा। उसकी कम होती हुई ताकत के साथ-साथ उसकी जिन्दगी का चिराग भी मन्द होता गया। आखिर उसकी आंखों का धुंधला-सा प्रकाश गायब हो गया।

वाल्तीगुल बहुत दिनों तक शान्त नहीं हो पाया, बहुत दिनों तक भाई की याद में रोता-धोता रहा। उसने चालीस दिन तक मातम मनाया और चालीस दिन होने पर आस-पास के अपने थोड़े-से और गरीब रिश्तेदारों को जमाकर और अपनी आखिरी पूंजी खर्च कर रस्म-रिवाज के मुताबिक भाई का शोक मनाया।

इस अवसर पर एकत्रित लोगों ने कहा कि दिवंगत बबर था। उसकी दास्तानों की चर्चा की गई। यह भी कहा गया कि सारा वन अनाथ हो गया, कि उसमें गुस्सा नहीं था।

"और मैं भी गुमसुम हो गया..." फिर सुबकते हुए वाल्तीगुल सोच रहा था। उसका दिल सीने की भांति ही सूना-सूना और वीरान था।

२

पतझर आई तो बाल्तीगुल ने एक ख़तरनाक काम करने की ठानी। उसने अंधेरी-बरसाती रात चुनी, मशक में दही मिला चून भरा और उसे घोड़े की काठी के साथ लटकाकर पहाड़ों की ओर चढ़ चला, उसके साथ हो ली उसकी पुरानी संगिनी और सलाहकार – भूख।

घोड़े पर जाता हुआ बाल्तीगुल सोच रहा था.

"चिर-प्रतीक्षित पतझर आ गई.. बारिश शोर मचा रही है, बारिश नज़र के सामने पर्दा डाल रही है, बारिश पद-चिह्नों को मिटा रही है .. अगर क़िस्मत ने साथ दिया तो सुबह होने तक उसे तीन दर्रों के पार ले जाऊंगा। क्या मैं बेकार ही ख़ाक छानता फिर रहा हूं, उसका पीछा कर रहा हूं, उसकी ताक में हूं?"

रात के रहस्यपूर्ण आकाश की छाया में पहाड़ों ने बहुत ही विराट रूप धारण कर लिया था। बाल्तीगुल बड़ी मुश्किल से ही पगडंडी को देख पा रहा था, मगर चट्टानों, ढलानों और खड्डों से सभी बातें साफ़ दिखाई दे रही थी। परछाईं की नज़र भूतों की नज़र की तरह तेज़ थी। और ये जगहें थीं उसकी जानी-पहचानी, ऐसी, जहां वह बार-बार आता-जाता था, उसकी बहुत ही प्यारी जगहें थीं।

दूरी से देखने पर दिन के समय दर्रे दैत्यों के पत्थर के पेड़ों के समान लगते थे, एकदम शीतल-सुनसान और सुन-

सानों के लिए अगम्य। निकट से और रात को वे दूसरा ही रूप धारण कर लेते थे—दहशत पैदा करनेवाले जीवधारी का। ढालों पर पड़े ऊंचे घने फ़र वृक्ष एक अतिकाय, उनींदे और चैन से सांस लेते हुए राक्षस की चमड़ी जैसे प्रतीत होते थे। घाटियां जानवरों के तने हुए नुकीले कानों जैसी लगतीं और खड्ड जानवरों के खुले हुए जबड़ों जैसे, ठंडी-ठंडी और मौत की सी सांसें छोड़ते हुए और उनमें से उभरे हुए होते बड़े-बड़े चट्टानी दांत।

मगर दाग़ीगुल को यहां डर नहीं लगता था। पर्वतों से तो उसका जन्म का नाता था। वे ख़ामोशी और चैन से उसका स्वागत करते थे, उसे अपनी ओर बुलाते थे और मानो कहते थे—बढ़ते आओ, जल्दी करो, हम तुम्हें छिपा लेंगे।

यह सच है कि पतझर की रात में, विशेषतः बरसात के समय, इस पगडंडी पर बहुत भरोसा नहीं किया जा सकता था। इसलिए उसने हिचके बिना अपनी जान को घोड़े के हवाले कर दिया। उसका घोड़ा मज़बूत, अनुभवी और ढालों पर चढ़ने-उतरने का आदी था। उसके क़दम सधे हुए थे और वह पहाड़ी बकरे की भांति चतुर था। कहीं-कहीं पर तो पगडंडी धागे की तरह पतली हो जाती थी, उस पर दो खुरों को एकसाथ टिकाना भी कठिन हो जाता था, मगर घोड़ा इत्मीनान से नपे-तुले क़दम रखता और खुरों से टटोलता चला जा रहा था। वह न तो झाड़ों और बढ़ी हुई चट्टानों के साथ अपनी बग़ल सटने देता और न

ही डरी-सहमी आंखों से बाईं ओर के खड्ड को देखता। यह तो रस्से पर चलनेवाले नट की भांति चला जा रहा था।

घोड़ा मंजिल पर पहुंचा देगा! उसे मालूम है कि मालिक कहां जाने की ठाने हुए है। जब बार्तागुल चिन्ता या खतरे के अपने भाव को जाहिर करते हुए उसके बगल-बगल अपने पैर सटा लेता, तो घोड़ा सिर झटकता और लगामों को झटका देकर मानो यह कहता कि मैं सहमत नहीं हूं। काठी के नीचे धीरे-धीरे हिलती हुई उसकी पीठ मानो तसल्ली देती—जब तक मंजिल पर न पहुंचा दूं, चैन से बैठे रहो और यहां तुम जानो और तुम्हारा काम..

बार्तागुल घोड़े पर जा रहा था और सोच रहा था—अपने बारे में, घोड़े और उसके बारे में, जिससे उसकी मुलाकात होनेवाली थी

"ऐसा मौसम तो तुम्हें भी पसन्द नहीं आ रहा होगा। बरसात में तो हम सभी बेघर कुत्तों की तरह होते हैं। देखेंगे कि कौन मैदान छोड़ता है, दुम दबाकर भागता है... आदमियों के परिवार के लोग हों या घोड़ोंवाले घर के दूसरे लोग हों—सब बराबर हैं! मगर घोड़ोंवाले घर ही मेरा रहा है।"

पतझड़ का धीमा और बादल-भरा था छोटा-सा दिन और भी अधिक छोटा महसूस हुआ। कुछ देर में और धीरे-धीरे हुई वर्षा से धुंधला होने लगा बार्तागुल देखकर भी सकपकाया और फिर अपने में खिंचा रहा, ऊबता रहा। एक बदमिजाजी था, खुबसूरत था और उसमें से बर्दा-

मीठी गन्ध आ रही थी। मगर वाग्नीगुल को खाली पेट नींद नहीं आई। भेड़िये के पेट के समान वाग्नीगुल के पेट ने भी दगा दिया। मशक खाली हो गयी। ऐसी ख़ुराक से भला मर्द का क्या बनता है? पेय... वह तो गले के लिए होता है, पेट के लिए नहीं। प्यास जैसे कम होती है भूख वैसे ही और अधिक परेशान करने लगती है।

वाग्नीगुल ने अन्धेरा होने तक बड़ी मुश्किल से इन्तजार किया। उसके मन का ऊहापोह खत्म हो गया। वह तो केवल एक ही आवाज सुन रहा था—अपनी गुप्त सलाहकार, अपनी स्थायी संगिनी—भूख—की आवाज।

"सार्मेन के घरवाले या उन्हीं के सगे-सम्बन्धी... ख़ुद शाह ही को होने दो... कोई भी क्यों न हो!"

घोड़ों के झुण्ड अभी तो पहाड़ी चरागाहों में होंगे। अभी उनका स्तेपियों में नीचे आने का समय नहीं हुआ। आज रात को यहां, आकाश को छूते हुए चरागाहों में ही उनसे मुलाकात होगी... ख़ुदा जानता है कि अपराधी कौन है...

फिर भी वाग्नीगुल के दिल की गहराई में सन्देह रेंग रहा था।

"कहते तो सार्मेन अपनी भलाई है न!" उसने सोचा। मगर जो कुछ मन में ठानी थी, उसे करने में पहले उसने अपनी भलाई देखी नहीं।

"मेरे घर में तो सिर्फ मुट्ठी भर आटा है..." उसने घोड़े के कान में फुसफुसाकर कहा—"पूरे परिवार के लिए

मुझे भर मन... बच्चों ने मुझे यहां भेजा है. वे बिल्कुल निर्दोष हैं..."

आधी रात को घोड़ा तेज़ी से चलने लगा। उसकी थकान थोड़ी हो गई, पहाड़ी चरागाह निकट ही था। कार्लीगुल ने अपने सम्मुख विस्तार अनुभव किया। वह रंग में आ गया, उसने अपनी पूंछ और छितरी हुई पीठ सीधी की। कार्लीगुल और घोड़े में नयी शक्ति, नई स्फूर्ति आ गई।

अब घुड़सवार मज़बूत डैनोंवाले ऐसे बड़े पक्षी के समान लग रहा था, जो धीरे-धीरे अपने पंख फैलाता है। वह पक्षी इन जगहों का पुराना निवासी है, इन पहाड़ी चोटियों और घाटियों, एलातेउम का स्वामी है। बस, बस, वह अपने पंख फैलायेगा, आकाश में उड़ान भरेगा और अला-ताऊ के चट्टानी सिरों और अगम खड्डों पर हवा में निश्चल होकर शिकार की खोज करेगा। अचानक वह कहीं अपनी नज़र टिका लेगा, तीर की भांति सनसनाता हुआ नीचे लपकेगा, शिकार को पकड़कर अपने इस्पाती पंजों में जकड़ लेगा।

कार्लीगुल को जवानी के दिनों की वह उन्मादी और गर्वीली अनुभूति हुई, जब वह कोतलवालों के इशारे पर गानों को इतना ऊंचा बोला करता था। तब वह अपने को ऐसा ही पक्षी अनुभव किया करता था, बेतहाशा उड़ता था, कुछ भी सोचे-विचारे बिना जो भी सामने आ जाता, उसी से भिड़ जाता था। उसे याद हो आया उसका शिकारी, बाज-सुलभ साहस और गुस्से की वह विस्फोट।

नहीं, वे बकरों जैसे बुद्धू नहीं थे, कि योंही दूसरों से सिर टकराते फिरा करें। उन्हें सुराग लगाना, घात में बैठना, चकमा और धोखा देना, यह सभी कुछ आता था। वे सोये हुए के ऊपर से ऐसे घोड़ा कुदा ले जाते थे कि उसकी आंख न खुले और जागते हुए की आंखों में धूल झोंककर उसके सामने से निकल जाते थे। वे बहुत चुस्त, चालाक और समझदार थे। इनमें न केवल काफ़ी ताकत ही थी, बल्कि अक्ल का मेल हो जाने पर तो सोने में सुहागा हो गया था। इसके अलावा ये अपनी धुन के भी पक्के पक्के थे। अगर किस्मत साथ न देती, तीर निशाने पर न बैठता, तो काम अधूरा छोड़कर कभी न लौटते, खूब डटकर लड़ते, अकेले-अकेले दो-दो तीन-तीन से भिड़ जाते।

काश कि वाल्मीगुन में अब वह पहले का सा जोश होता, उभार की सी वह चुस्ती-फुर्ती होती। नहीं, इसका तो अब नाम-निशान भी बाकी नहीं रह गया था। उसे अपने दिल में कहीं कोई तार टूटा-सा, कहीं कुछ छिन्न-भिन्न होता-सा प्रतीत हुआ।

पर अब सोच-विचार करने का वक्त नहीं था। वाल्गीमुन ने अपनाई की विशेष अनुभूतिशीलता से ही नर्म और गीली घास पर घोड़ों के बड़े झुण्ड की मौजूदगी को मालूम कर लिया। घोड़े अभी दूरी में ही थे पर थे, मगर वाल्गीमुन को बयार के शोर और हवा की सरसराहट के बीच से ही उनकी आहट मिल गई थी।

अगर यहाँ अनुभवी रखवाले हैं, तो वे झुण्ड के आसपास ही चक्कर लगाते होंगे ताकि उन्हें पदचाप अच्छी तरह से सुनाई दे और वे अजनबी को जल्दी से पकड़ लें। ऐसों को तो अंधेरी रात में भी चकमा देना बहुत कठिन होता है। बाल्तीगुल ने सावधानी बरती कि पत्थरों पर उसके घोड़े के नाल न बज उठें, कि बहुत समय तक एकाकी रहने के कारण घोड़ों के झुण्ड को देखते ही वह हिनहिना न उठे।

फुर्ती करना घातक हो सकता था। चोरी-चकारी के काम में धैर्य और दूर-अन्देशी ही सफल होते हैं। बाल्तीगुल घोड़े की लगाम थामे हुए था, उसे सिर नहीं झुकाने दे रहा था। यह खुद भी चौकस हो गया, सब कुछ भी तो हो सकता था। उसकी छोटी-छोटी आँखें बाज़ की आँखों की तरह पैनी हो गई थीं, गोल-गोल हो गई थीं मानो अंधेरे में सचमुच ही सब कुछ देख सकती हों।

झुण्ड चरागाह वाली ढाल पर धीरे-धीरे बाल्तीगुल की ओर ऊपर आ रहा था। घोड़ों के झुण्ड और बाल्तीगुल के बीच बहुत ही थोड़ा फ़ासला था। बाल्तीगुल किसी ऊँची चट्टान की ओट में तैयार हो गया। घोड़े नथुने बजाते और होंठ फड़फड़ाते हुए सिर झुका कर गीली घास चर रहे थे। घोड़ों की साँसों और उसाँस से अक्सर हिनहिनाहट हुआ सब सुनाई दे रही थी। छोटे-छोटे बछेड़ों के हिनहिनाने, चौंकने और सतर्क ... अर्थात् बड़े घोड़ों की आवाज़ भी कभी-कभार ही सुनाई देती थी। यहीं पर घोड़ों के झुण्ड का अगुआ हुआ और घोड़ा-

वास्तीगुल की आंखों के सामने साफ़ झलक उठा। वह यह सोचकर कांप उठा—कहीं सवेरा तो नहीं हो गया। नहीं, नहीं, ऐसा कुछ नहीं था। झुण्ड बहुत बढ़िया था, बहुत ही बढ़िया।

वास्तीगुल ने टोपी उतारकर जीन के सिरे पर टांग दी। अपनी लम्बी मूछ को चबाते हुए उसने आहट ली। उसे सब कुछ ठीक-ठाक लगा। चरवाहे या तो शैतानों की तरह चालाक हैं, या फिर नींद का मज़ा ले रहे हैं। यहां न तो कोई दिखाई दे रहा था, न किसी की आवाज़ ही सुनाई पड़ रही थी। हां, मगर घोड़े सटे हुए चर रहे थे, यह बात उसे चौकन्ना होने के लिए मजबूर करती थी। संयोग से ऐसा नहीं होता। किसी होशियार आदमी ने उन्हें इकट्ठा किया था, उनका बड़ा-सा झुण्ड बनाया था और हाथ को हाथ सुझाई न देनेवाली इस अन्धेरी रात में नई चरती में ले जा रहा था।

अचानक पता हुआ कि आपस में सटे हुए घोड़ों के इस बहुत बड़े झुण्ड में से कुछ सफ़ेद घोड़े अलग होकर उस चट्टान की ओर बढ़ गये, जिसके पीछे वास्तीगुल छिपा हुआ था। वह उसी समय अपने घोड़े की पीठ पर लेट गया और उसने उसे अपनी दाहिनी बाग की ओर मुड़ा देने के लिए विवश किया। घोड़े अलग-अलग हुए, इधर-उधर बिखरे और फिर से बड़े झुण्ड में जा मिले। अच्छा! यह तो, एक घोड़ा अपने टोले से झुण्ड की तरफ़ भाग गया। सम्भवतः पास में कोई चरवाहा नहीं था...

धार्त्तागुल ने फ़ौरन अपने घोड़े को हल्की-सी एड़ लगाई। घोड़ा उसी क्षण बहुत धीरे से, मानो घास चर रहा हो, झुण्ड की ओर बढ़ चला।

यह छोटा-सा झुण्ड फ़ौरन चौकन्ना हो गया और एक ओर को हटने लगा। वह इस अकेले और अजनबी घोड़े को अपने पास नहीं आने देना चाहता था। लम्बे अयालोंवाले सुन्दर कत्थई घोड़े ने, जिसके इर्दगिर्द पूरा झुण्ड जमा था, सिर ऊपर को झटका और धीरे से जरा हिनहिनाया। उसने तो मानो पूछा: "तुम कौन हो?" जाहिर है कि मादाओं की ओर भी उसका ध्यान गया था।

अनुभवी और सधे हुए कान तो फ़ौरन घोड़े की इस हल्की आवाज़ का अर्थ समझ जाते। इसमें धमकी और चुनौती थी। कहीं कोई चरवाहा उसे सुनकर पता न पाता! मगर धार्त्तागुल का घोड़ा ठीक समय पर थोड़ा हट गया और धार्त्तागुल ने ऐसा ढोंग किया मानो वह जीन पर बैठा हुआ ऊंघ रहा हो। जरा झुककर घोड़े ने सिर नीचे कर लिया।

शुरू से ही धार्त्तागुल की इस छोटे-से झुण्ड के पीछे [illegible] हुई - एक बार, दो बार [illegible]। घास के मैदान [illegible] बिलकुल क़रीब आने दिया या नहीं [illegible] कि वे छोटे-बड़े हैं या नहीं। धीरे-धीरे धार्त्तागुल का घोड़ा इस छोटे झुण्ड के क़रीब [illegible] और अब धार्त्तागुल ने [illegible] [illegible] भी [illegible]।

मुराद पूरी हो गई थी... उसके सामने मोटी-ताज़ी घोड़ी थी, इस छोटे झुण्ड में, शायद सारे झुण्ड में ही सब से अच्छी! उसके पुट्ठे बड़े मोटे-मोटे, गोल-गोल थे, अयाल कटे हुए। कत्थई घोड़े के करीब ही चरती हुई बहुत ही खूब थी वह...

वाल्तीगुल ने जीन से बालों का बना हुआ फंदा उतारा। अब वह किसी तरह का ऊहापोह नहीं करेगा। जब समझदार और अपने काम को अच्छी तरह जानने-समझनेवाला वाल्तीगुल का घोड़ा इस छोटे-से झुण्ड के बीच पहुंच गया और उसने अपने कंधे को घोड़ी से सटा दिया, तो वाल्तीगुल ने अंधेरे में पहली ही बार अचूक फंदा फेंक कर घोड़ी की गर्दन को उससे फांस लिया। ऐसे तो वाल्तीगुल उड़ते परिन्दे को भी फांस सकता था।

घोड़ी बहुत ही उद्दंड थी—गर्मी भर न तो उसे लगाम पहनाई गई थी और न ही उसकी अगाड़ी पिछाड़ी बांधी गई थी। यह सनकी घोड़ी डर कर हिनहिनाई और अपने झुण्ड से अलग होकर आंधी सी भाग चली। मगर वाल्तीगुल का घोड़ा इसके लिए तैयार था—वह कोई ऐसा वैसा घोड़ा थोड़े ही था! ठिठकने या इन्तज़ार किये बिना ही वह भी भागती के पीछे-पीछे तेज़ी से साथ चला। इस तरह उसने अपने मालिक के हाथ से फंदा नहीं निकलने दिया।

तूफ़ानी घोड़ी देर तक उछलती कूदती और लगातार इतनी तेज़ी के साथ भागती दौड़ती रही कि वाल्तीगुल के हाथ में पकड़ा हुआ फंदा जाता भी भारी महसूस हुआ।

बाल्दीगुन बहुत सावधानी और ढंग से फंदे को थामे रहा। उसने घोड़ी को इधर-उधर होने या फंदे को हाथ से निकलने नहीं दिया। अपने पीछे की ओर वह कोई ध्यान नहीं देता था, चरवाहे का घोड़ा अपने-आप ही ठीक ढंग से चला जा रहा था, घुड़सवार की मदद करता हुआ। दौड़ती हुई घोड़ी दुलत्ती चलाती थी, ठोकर खाती थी, पर जल्द ही थक गई। तब वह चक्कर काटते हुए झुण्ड की ओर लौटने लगी। अब बाल्दीगुन ने उसे अपने हाथों की ताकत और चरवाहे की कमर की मजबूती दिखाई। फंदे को ज़ोर से कसते हुए वह अपनी पीठ के बल पीछे की ओर लेट गया। फंदे में फंसी हुई घोड़ी ने दायें-बायें गर्दन झटकी और फिर उसकी चाल धीमी पड़ गई। इसके बाद वह सिर झुकाकर एकदम निश्चल खड़ी हो गई।

फंदे के तारों को बहुत सावधानी से समेटते और छोटा करते, धीरे-धीरे प्यार भरे तथा अधिकारपूर्ण शब्दों से घोड़ी को शान्त करते हुए बाल्दीगुन उसके पास आया और उसने फुर्ती से उसे लगाम पहना दी। पसीने और झागों से भीगे हुए घोड़ी के पुट्ठे पर हल्का-सा चाबुक सटकाते हुए वह उसे अपने पीछे ले चला।

बाल्दीगुन से दूर हटते हुए झुण्ड के घोड़े घबराहट से इधर-उधर चक्कर दौड़ाने, एक-दूसरे से सटने और हेल-मेल करने लगे। घोड़ी को इस हेल-मेल की ओर भी ध्यान रखना पड़ता था। और लीजिये, बाल्दीगुन को अपनी दिखाना पड़ा, वरना वह अपना अधिकार नहीं होगा, क्यों

ऊपर बड़े-से घोड़े पर सवार और बड़ा-सा लट्ठ लिए एक हट्टे-कट्टे आदमी की झलक मिली।

यह कहीं आँखों का धोखा तो नहीं? नहीं... वह रास्ते में निश्चल खड़ा था, डंडे की तरह, न हिलता था न डुलता था। वह सोच रहा था कि यह अपना है या पराया? ज़रूर भूसा भरा है उसके दिमाग में...

वास्तीगुल ने अपने घोड़े को ज़ोरदार एड़ लगाई और उसे आगे बढ़ाया। इस हट्टे-कट्टे आदमी ने चुपचाप अपनी लम्बी बाँह बढ़ाई और वास्तीगुल के घोड़े की लगाम पकड़ ली। आख़िर उसकी समझ में बात आ गई! बहुत बुरा हुआ। वास्तीगुल यह कल्पना करके काँप उठा कि मानो वह उसके कंधों को जकड़े हुए अपनी ओर खींच रहा है... मगर वह हट्टा-कट्टा बहुत ही अजीब ढंग से पेश आया। वह वास्तीगुल के घोड़े को मानो भरे मन से, बुझे-बुझे और ढीले-ढाले ढंग से हाँकने लगा। उसने अपना लट्ठ ऊपर नहीं उठाया। वह किसी चीज़ की प्रतीक्षा करते और प्यार से साफ़ मुस्कराते हुए चल रहा।

वास्तीगुल भावों से भरा हो गया, उसने ध्यानपूर्वक उसे देखा और फिर अचानक ही ठहाका लगा दिया। हाँ, यो उसके सामने [illegible] नहीं, [illegible] थी। अरे, उसके सामने बोताई खड़ा था, गुलिस्तान [illegible], पहले भी भी कभी साथ और पूरे [illegible] दिलासा [illegible] लिये [illegible] गर्मी की धूप [illegible]। और उसका [illegible] नहीं [illegible] था? और उसका [illegible] नहीं [illegible] था?

"[illegible] छोड़ दूंगा... मिट्टी के माधो!" वाख़्तीगुल ने भयानक ढंग से फुसफुसाकर कहा। उसने कोकाई के चूहे जैसे सिर पर चाबुक मारकर उसकी टोपी नीचे गिरा दी।

वाख़्तीगुल ने बहुत धीरे से चाबुक मारा था। यह कहना अधिक सही होगा कि चाबुक मारकर उसका अपमान किया था। मगर कोकाई बोरी की तरह ज़ीन से नीचे जा गिरा और पहले से ज्यादा ज़ोर से बुड़-बुड़ करता हुआ अपने घोड़े की ओट में हो गया। उसने तो चीखने-चिल्लाने और अपने साथियों को पुकारने तक की हिम्मत नहीं की। वह जानता था कि वे सदा की भांति उसकी खिल्ली उड़ायेंगे और बस, यहीं क़िस्सा ख़त्म हो जायेगा। उसके लिए तो ज्यादा अच्छा यही है कि चुप्पी साधे रहे, रात के अंधेरे में छिपा रह कर अल्ला से यह दुआ मांगे कि यह अजनबी जल्दी से जल्दी यहां से चला जाये।

वाख़्तीगुल ने लगाम झटकी और घोड़े को सरपट दौड़ाता हुआ बड़ी घाटी की ओर बढ़ चला जो चीड़ के वृक्षों से ढकी हुई थी। वहां वह बढ़िया ढंग से छिप सकेगा, वहां तो दिन के समय भी उसके चिह्न नहीं मिल सकेंगे...

हां, कोकाई – वह तो सास्मेन, एक सास्मेन का चरवाहा था! मतलब यह कि तीर ठीक निशाने पर बैठा था, जासूसी कुत्ते के दिल में जाकर लगा था। बेकार ही वह दो दिनों तक चट्टानों की ख़ाक छानता रहा...

वाख़्तीगुल का घोड़ा ठूंठ के गिर्द चक्कर काटता हुआ तेज़ी से उड़ा जा रहा था। घोड़ी की [illegible] बिना

तेजी से, क़दम से क़दम मिलाये हुए साथ-साथ चली जा रही थी। उनके सामने ठंडी घाटी का मुंह खुला हुआ था। यहां दूसरा चरवाहा दिखाई दिया।

यह चरवाहा ऊपर से दर्रे की ओर से अपने बढ़िया घोड़े को सरपट दौड़ाते आ रहा था। याल्तीगुल का रास्ता काटते हुए वह ज़ोर से चिल्लाया:

"ए, कौन है वहां? कौन हो तुम?!"

याल्तीगुल उसकी आवाज़, उसके विश्वासपूर्ण रंग-ढंग से फ़ौरन उसे पहचान गया। यह कोई कायर, कोई बुज़दिल नहीं है। किसी सूरत भी बचकर नहीं जाने देगा। कभी तो ख़ुद याल्तीगुल भी इसकी जगह गल्लेबान की नौकरी बजाता था। वह जानता था कि किस पर भरोसा किया जा सकता है।

अपने घोड़े के अयालों पर झुकते हुए याल्तीगुल ने चुपचाप अपना लट्ठ तैयार किया। घोड़े को सरपट दौड़ाते आते हुए चरवाहे ने भी अपना लट्ठ सिर के ऊपर उठाया और पूरे ज़ोर से चिल्लाया:

"ए भाइयो...जल्दी से इधर मेरी तरफ़ आओ! सुनो हो!.." उसके पीछे उसकी आवाज़ की प्रतिध्वनि गूंज उठी।

इसी क्षण विभिन्न दिशाओं से अन्य चरवाहों की आवाज़ें सुनाई दीं। जिस जल्दी से उन्होंने अपने साथी की पुकार का जवाब दिया, उससे साफ़ था कि वे सभी जाग रहे थे और वे भी चौकन्ने। अंधेरे में ही उन्होंने झटपट और

किसी तरह की भूल-चूक के बिना ही यह समझ लिया कि उन्हें किधर जाना चाहिये। प्रतिध्वनि ने उन्हें किसी तरह के भ्रम में नहीं डाला। चार्ल्सीगुन को अपने पीछे तेज घोड़ों की टापों की गूंज सुनाई दी।

घोड़ों के झुण्ड के ऊपर 'मारो-पकड़ो' का भयानक शोर गूंज उठा। चरवाहे बुरी तरह से चीखते-चिल्लाते हुए मानो एक-दूसरे को बढ़ावा दे रहे थे ... वे अपने घोड़ों को उड़ाये चले आ रहे थे ... पल भर में घोड़ों के मालिक और इशारों को माननेवाले झुण्ड में खलबली मच गई।

इसलिये घोड़ों के सिर और अयाल एकदम ऊपर हो गये, लम्बी-लम्बी पूंछें लहराईं और मानो हवा में उड़ने लगीं। घोड़े गुस्से से एक-दूसरे को काटते थे, लातें मारते थे, दुलत्तियां चलाते थे और पिछली टांगों पर खड़े होते थे। अपनी घोड़ियों और छोटे झुण्डों को अलग करने की कोशिश करते हुए घोड़े इधर-उधर भाग-दौड़ रहे थे। घोड़ों की टापों के इस गड़बड़ शोर में सांसों की आवाजें डूबकर रह गईं।

जैसे नदी की लहरें बांध की ओर बढ़ने से पहले भंवर बनाती हैं, उसी प्रकार घोड़ों की दौड़ें घूम रही थीं, चक्कर काट रही थीं। इसके बाद वे सिमटकर एक हो गईं और ज़ोर से आगे मानो टूटे हुए शरीरों का एक बड़ा-सा भंवर बन गया। इस प्रकार अचानक एक भयानक और विनाशकारी ताल से बढ़कर हजारों खुरों से धरती को रौंदता हुआ आगे बढ़ चला।

तेजी से, क़दम से कदम मिलाये हुए साथ-साथ चली जा रही थी। उनके सामने ठंडी घाटी का मुंह खुला हुआ था। यहा दूसरा चरवाहा दिखाई दिया।

यह चरवाहा ऊपर से दर्रे की ओर से अपने बढ़िया घोड़े को सरपट दौड़ाये आ रहा था। वाक़्तीगुल का रास्ता काटते हुए वह ज़ोर से चिल्लाया:

"ए, कौन है वहां? कौन हो तुम?!"

वाक़्तीगुल उसकी आवाज़, उसके विश्वासपूर्ण रंग-ढंग से फ़ौरन उसे पहचान गया। यह कोई कायर, कोई बुजदिल नही है। किसी सूरत भी बचकर नहीं जाने देगा। कभी तो खुद वाक़्तीगुल भी इसकी जगह साल्मेन की नौकरी बजाता था। बाई जानता था कि किस पर भरोसा किया जा सकता है।

अपने घोड़े के अयालो पर झुकते हुए वाक़्तीगुल ने चुपचाप अपना लट्ठ तैयार किया। घोड़े को सरपट दौड़ाये आते हुए चरवाहे ने भी अपना लट्ठ सिर के ऊपर उठाया और पूरे ज़ोर से चिल्लाया:

"ए भाइयो...जल्दी से इधर मेरी तरफ आओ! सुनते हो!.." उसके पीछे उसकी आवाज़ की प्रतिध्वनि गूंज उठी।

इसी क्षण विभिन्न दिशाओं से अन्य चरवाहों की आवाजें सुनाई दी। जिस जल्दी से उन्होने अपने साथी की पुकार का जवाब दिया, उससे साफ़ था कि वे सभी जाग रहे थे और थे भी बहुत-से। अंधेरे मे ही उन्होने झटपट और

किसी तरह की भूल-चूक के विना ही यह समझ लिया कि उन्हे किधर जाना चाहिये। प्रतिध्वनि ने उन्हें किसी तरह के भ्रम में नही डाला। बाख़्तीगुल को अपने पीछे तेज घोड़ों की टापों की गूंज सुनाई दी।

घोड़ों के झुण्ड के ऊपर 'मारो-पकड़ो' का भयानक शोर गूंज उठा। चरवाहे बुरी तरह से चीख़ते-चिल्लाते हुए मानो एक-दूसरे को बढ़ावा दे रहे थे ...वे अपने घोड़ो को उड़ाये चले आ रहे थे... घड़ी भर में घोड़ों के शान्त और इशारों को माननेवाले झुण्ड में खलवली मच गई।

दसियों घोड़ों के सिर और अयाल एकसाथ ऊपर हो गये, लम्बी-लम्बी पूंछें लहराईं और मानो हवा में उड़ने लगीं। घोड़े गुस्से से एक-दूसरे को काटते थे, लातें मारते थे, दुलत्तियां चलाते थे और पिछली टांगों पर खड़े होते थे। अपनी घोड़ियों और छोटे झुण्डों को अलग करने की कोशिश करते हुए घोड़े इधर-उधर भाग-दौड़ रहे थे। घोड़ों की टापों के इस गड़वड़ शोर में लोगों की आवाजें डूबकर रह गईं।

जैसे नदी की लहरें ढाल की ओर बढ़ने के पहले भंवर बनाती है, उसी भाति घोड़ो की पीठें घूम रही थीं, चक्कर काट रही थी। इसके वाद वे मिलकर एक हो गई और जोश में आये मानो जुडे हुए शरीरों का एक बड़ा-सा भंवर वन गया। यह भंवर अचानक एक भयानक और विनाशकारी धारा मे बदलकर हजारों सुमो से धरती को रौंदता हुआ आगे बढ़ चला।

तेजी से, कदम से क़दम मिलाये हुए साथ-साथ चली जा रही थी। उनके सामने ठंडी घाटी का मुंह खुला हुआ था। यहा दूसरा चरवाहा दिखाई दिया।

यह चरवाहा ऊपर से दर्रे की ओर से अपने बढ़िया घोड़े को सरपट दौड़ाये आ रहा था। बाख़्तीगुल का रास्ता काटते हुए वह ज़ोर से चिल्लाया:

"ए, कौन है वहां? कौन हो तुम?!"

बाख़्तीगुल उसकी आवाज़, उसके विश्वासपूर्ण रंग-ढंग से फ़ौरन उसे पहचान गया। यह कोई कायर, कोई बुज़दिल नही है। किसी सूरत भी बचकर नही जाने देगा। कभी तो ख़ुद बाख़्तीगुल भी इसकी जगह साल्मेन की नौकरी बजाता था। बाई जानता था कि किस पर भरोसा किया जा सकता है।

अपने घोड़े के अयालो पर झुकते हुए बाख़्तीगुल ने चुपचाप अपना लट्ठ तैयार किया। घोड़े को सरपट दौड़ाये आते हुए चरवाहे ने भी अपना लट्ठ सिर के ऊपर उठाया और पूरे ज़ोर से चिल्लाया:

"ए भाइयो... जल्दी से इधर मेरी तरफ़ आओ! सुनते हो!.." उसके पीछे उसकी आवाज़ की प्रतिध्वनि गूंज उठी।

इसी क्षण विभिन्न दिशाओं से अन्य चरवाहों की आवाज़ें सुनाई दी। जिस जल्दी से उन्होंने अपने साथी की पुकार का जवाब दिया, उससे साफ था कि वे सभी जाग रहे थे और थे भी बहुत-से। अंधेरे मे ही उन्होंने झटपट और

किसी तरह की भूल-चूक के बिना ही यह समझ लिया कि उन्हें किधर जाना चाहिये। प्रतिध्वनि ने उन्हें किसी तरह के भ्रम में नही डाला। बाल्तीगुल को अपने पीछे तेज़ घोड़ों की टापो की गूज सुनाई दी।

घोड़ों के झुण्ड के ऊपर 'मारो-पकड़ो' का भयानक शोर गूंज उठा। चरवाहे बुरी तरह से चीख़ते-चिल्लाते हुए मानो एक-दूसरे को बढ़ावा दे रहे थे ...वे अपने घोड़ों को उड़ाये चले आ रहे थे... घड़ी भर में घोड़ों के शान्त और इशारों को माननेवाले झुण्ड में खलबली मच गई।

दसियो घोड़ों के सिर और अयाल एकसाथ ऊपर हो गये, लम्बी-लम्बी पूछें लहराईं और मानो हवा में उड़ने लगी। घोड़े गुस्से से एक-दूसरे को काटते थे, लातें मारते थे, दुलत्तियां चलाते थे और पिछली टागों पर खड़े होते थे। अपनी घोड़ियों और छोटे झुण्डो को अलग करने की कोशिश करते हुए घोड़े इधर-उधर भाग-दौड़ रहे थे। घोड़ों की टापों के इस गडबड़ शोर में लोगों की आवाज़ें डूबकर रह गईं।

जैसे नदी की लहरें ढाल की ओर बढ़ने के पहले भंवर बनाती है, उसी भांति घोड़ों की पीठें घूम रही थी, चक्कर काट रही थी। इसके बाद वे मिलकर एक हो गईं और जोश में आये मानो जुड़े हुए शरीरों का एक बड़ा-सा भंवर बन गया। यह भंवर अचानक एक भयानक और विनाशकारी धारा में बदलकर हज़ारों सुमों से धरती को रौंदता हुआ आगे बढ़ चला।

घोड़ो का झुण्ड ऐसे घबराया और डरा हुआ था मानो बाढ आ गई हो या आग लग गई हो। इसलिए वह रास्ता न पाकर चरागाहों मे अधाधुंध भागा चला जा रहा था। घोड़े एक दूसरे से बगले रगड़ते, जुड़े हुए, और कमजोरों को गिराते और रौंदते हुए सरपट भागे जा रहे थे। बर्फ़ के ढेर से अलग जा गिरनेवाले ककड़-पत्थरों की भांति दम तोड़ते हुए एक वर्षीय बछेरे झुण्ड से अलग और बेहोश होकर जमीन पर गिरते जा रहे थे।

प्रतीत होता था कि मानो बादलों की अन्तहीन और कानो के पर्दे फाड़नेवाली गड़गड़ाहट घाटी से दर्रे तक पहाड़ी चरागाहों और आसपास के पर्वतो के ऊपर फैलकर निश्चल हो गई है। यह भी गनीमत ही समझिये कि घोड़ो की यह लहर खड्ड की ओर नही बह रही थी।

एक के बाद एक चरवाहा रुका और वापिस मुड़ा। बहुत देर से उन्हे अपनी गलती का एहसास हुआ । उन मे से किसी ने भी यह नही देखा कि वे किसका पीछा कर रहे है। अन्धेरे में वे किसी भी क्षण राह भटक सकते थे। घोड़ों का झुण्ड बडी मुश्किल से रोका और शान्त किया गया।

आखिर वे शान्त हो गये और घास चरने लगे। केवल अपने बछेरो को खोजती हुई घोड़ियों की हिनहिनाहट ही ख़ामोशी को चीरती रही।

चरवाहे एक जगह पर इकट्ठे होकर चीख़ने-चिल्लाने,

एक-दूसरे की लानत-मलामत करने और एक-दूसरे को डाटने-डपटने लगे :

"यह हुआ क्या था? कौन सब से पहले चिल्लाया था? वह कम्बख्त शैतान कहां से आ धमका था? किसने उसे सब से पहले अपनी आखों से देखा था?"

. मगर किसी ने भी न तो कुछ देखा था और न ही कोई कुछ जानता था। मगर रात के समय चीखा न जाये, यह भी कैसे हो सकता है? अधेरे में एक की पुकार दूसरे के लिए नजर का काम देती है. .

चीख़ने-चिल्लानेवालो ने जब ध्यान से देखा-भाला, तो पाया कि बड़ा चरवाहा गायब है।

ये लोग अब घाटी में लौटे, इधर-उधर बिखर गये और एक-दूसरे को धीरे-धीरे आवाज़ देते हुए जामान्ताय को पुकारने लगे।

चुस्त कोकाई ने चरागाह की चट्टानी किनारोंवाली ढाल के नुकीले पत्थरो पर उसे जा ढूढ़ा। जामान्ताय धीरे-धीरे कराह रहा था, उस से ताजा रक्त की गन्ध आ रही थी, उसका लट्ठ पास ही पड़ा था लेकिन उसके घोडे का कही अता-पता नही था।

"ए! .." कोकाई चिल्लाया। "इधर आकर देखो... किसी ने इसका सिर तोड डाला है... उसका तो सारा ख़ून ही बह गया है!"

चरवाहे जामान्ताय को उठा ले चले।

"जिन्दा है! सास आ-जा रही है...ं किसने ऐसा किया? किसने?"

बड़ा चरवाहा घाटी की ओर इशारा करता हुआ अस्पष्ट-सा कुछ बड़बड़ाता रहा।

इन्ही पत्थरो पर उसकी वाख़्तीगुल से मुठभेड़ हुई थी। घोडे को भगाये आते हुए जामान्ताय ने ही गुस्से से पहले वार किया। उसकी चोट हल्की रही, निशाने पर नही बैठी। लट्ठ का बिचला हिस्सा कधे पर लगा। मगर जवाबी चोट खूब करारी रही—घोड़ा और घुडसवार ढाल से नीचे जा गिरे...

जामान्ताय अजनबी को पहचान नही पाया। मगर इस बात को ध्यान में रखते हुए कि चोर ने रात के समय कैसी होशियारी से काम किया, ढेर सारे रखवालो की आंखों मे धूल झोंक गया यह जाहिर था कि उसे अपने काम मे कमाल हासिल है, वह हेरीफेरी के काम मे घुटा हुआ है। घोडे का मूल्य आका जाता है उसकी तेजी से, भेड़िये को जाना जाता है उसकी चुस्ती से...

वाख़्तीगुल दुलकी चाल से घोडे को दौड़ाता हुआ इत्मीनान से घाटी को लाघ रहा था। शुरू में तो वह आहट लेता रहा, फिर शान्त हो गया और उसके घोड़े ने भी कनौतियां बदलना बन्द कर दिया। उसका पीछा नही किया जा रहा था। फिर भी वाख़्तीगुल ने चीड़ वृक्षों के बीच से कई चक्कर काटे। उसने नम भूमि पर घोड़े को चक्कर लगवाये और चिकने पत्थरों पर से आगे बढा। वैसे भी बरसात के बाद उसके निशानों को पहचानना सम्भव नही था।

बाल्तीगुल अपना शिकार लिए हुए बढता चला गया। वह घोड़ी को बार-बार प्यार से देखता हुआ बहुत ख़ुश हो रहा था। बहुत ही पसन्द आई थी उसे वह।

घोड़ी की गर्दन पर हाथ फेरते हुए उसने उसके कटे हुए अयाल के नीचे छूकर देखा तो वहां चर्बी की मोटी तह पाई। क्या उसे बहुत बडी सफलता हाथ नही लगी थी? बहुत अर्से से बाल्तीगुल कभी इतना ख़ुश नही हुआ था।

"बहुत ख़ूब है...", उसने प्रशसा करते हुए धीरे से कहा। "बहुत बढ़िया जानवर है।.." इसलिए कि घोड़ी को कही नजर न लग जाये, उसने अपनी उंगलियो पर थूका।

पानी लगातार बरसता जा रहा था। भीगा-भीगा अंधेरा बाल्तीगुल का मुंह धो रहा था। वह मुस्कराता हुआ गीली मूंछो पर ताव दे रहा था। बाल्तीगुल को राह से भटक जाने का डर नहीं था। बेशक आकाश अंधेरे की चादर में लिपटा था, पर्वत भी काले-काले थे और उसके घोड़े की थूथनी के सामने काले ऊन के उलझे-उलझाये गोले जैसा अंधेरा छाया हुआ था, पर बाल्तीगुल को इस अन्धेरे में आकाश भी दिखाई दे रहा था, उसे पहाड़ और अपना रास्ता भी बहुत साफ नजर आ रहा था।

पौ फटने के बहुत पहले ही उसने गन्ध से यह अनुभव कर लिया कि वह सारीमसाक्त के जंगल के निकट पहुंच गया है। चढ़ाई की तुलना मे उतराई हमेशा जल्दी से तय हो जाती है... मालिक की तरह उसका घोड़ा भी काम से

जी चुराना नही जानता था। मगर जब जंगल के छोर पर राल की तेज गन्ध नाक में घुसी, तो वाख़्तीगुल ने नाक-भौह सिकोड़ी, मुह फेर लिया और उसे उबकाई-सी आने लगी। उसने बचा-बचाया सूप पिया, घोड़े से उतरा, घोड़े की काठी उतारी, उसका तन पोंछा, उसकी पीठ, पहलू और छाती को सहलाया। घोड़ा भी जरा दम ले ले, उसका पसीना सूख जाये—इसे भी भूख सता रही होगी।

एक पुराने चीड़ वृक्ष के नीचे काठी पर बैठा हुआ वाख़्तीगुल सोच मे डूब गया। उसके घोड़े ने अपनी थूथनी से धीरे से मालिक के कधे को हिलाया। हां, सचमुच चलने का वक्त हो गया था। उजाला होने तक दूर निकल जाना चाहिए। उसे अब देर नही करनी चाहिए, चोरी का माल ले उड़ना चाहिए।

वाख़्तीगुल ने फिर से घोड़े पर जीन कसा और उसके पिछले बन्द को जोर से बाध दिया ताकि लगातार ढाल से नीचे उतरते समय जीन खिसक कर घोड़े की गर्दन पर न पहुंच जाये।

३

सुबह होने को थी, जब पानी बरसना बन्द हो गया, कुछ कुछ गर्मी हो गयी। वाख़्तीगुल को नीद ने धर दबाया। वह मूंछों से छाती को छूता हुआ जीन पर बैठा-बैठा ही सो गया।

अपने ही खर्राटे की आवाज़ से वह चौंक कर जागा, डर से सिहरा और उसने फटी-फटी आंखों से इधर-उधर देखा। नींद में उसे लगा था मानो उसका गला घोटा जा रहा है।

उजाला हो गया था। ओह, किसी की नज़र न पड़ जाये उस पर...

वाख़्तीगुल चिचड़ियों की भांति सिमटे-सिमटाये और जाले के समान उलझे-उलझाये कंटीले झाड़-झंखाड़ के बीच लुकी-छिपी लम्बी राह पर बढ़ता चला गया।

अब वाख़्तीगुल दिन को भी कहीं न ठहरा, मंजिल की ओर बढ़ता ही चला गया। उसने न खुद चैन की सांस ली और न घोड़ों को ही दम लेने दिया।

"घर पहुंचना चाहिए, बच्चे इन्तज़ार में होंगे..." वाख़्तीगुल घोड़े के कान में बुदबुदाता रहा।

वाख़्तीगुल का झोपड़ा अनाथ की तरह दूसरों से अलग-थलग एक वीरान पहाड़ी घाटी में आश्रय लिया हुआ था। इस इलाक़े में से धूल भरे कारवां के रास्ते नहीं गुज़रते थे, लेकिन यहां चुराये हुए घोड़ों का पूरा झुण्ड भी छिपाया जा सकता था। वाख़्तीगुल का यहीं जन्म हुआ था और यहीं उसने अपने मां-बाप की मिट्टी ठिकाने लगाई थी। यहां उसका अपना घर था।

घर के क़रीब पहुंचने पर वह घोड़े से उतरा, अगाड़ी बांधी, अपनी टांगें सीधी करता, सूखे ज़बान फेरता और झूमता हुआ घर की ओर

वर्फ पड़ने मे अभी कम से कम एक महीने की देर थी, इसलिए परिवार वाड़े के निकट खड़े फटे-पुराने और धुएं से काले हुए खेमे में रहता था।

वाख़्तीगुल खासा और अपनी थकी-हारी मुस्कान को छिपाने के लिए काली मूछों को मरोड़ने लगा। उसे हातशा दिखाई दी। धूप के कारण विल्कुल काली-सी हुई और चियडों से जैसे-तैसे अपना तन ढके। वह चूल्हे के पास कामकाज मे लगी थी, वच्चों के लिए चाय वना रही थी। वाख़्तीगुल के तीन वच्चे थे—सवसे वड़ा सेइत दस साल का था, उससे छोटा जुमवाई पाच साल का था और दो साल की सांवली तथा चचल वातिमा अभी मां का दूध पीती थी। दो वेटे और एक वेटी... यही सारी दौलत थी वाख़्तीगुल और हातशा की।

वाप के आने पर वच्चों ने न तो कोई शोर-गुल किया, न किसी तरह की कोई हलचल ही हुई। फिर भी उसके आते ही धुएं से काले हुए ख़ेमे में जैसे उजाला हो गया। सुन्दर-सुगढ़ हातशा पति को देखते ही वुत-सी वनी रह गयी, कुछ शुभ-अशुभ की प्रतीक्षा करती हुई। वाख़्तीगुल पुरुप की प्रतिष्ठा को वनाये हुए शान्त भाव से और चुपचाप घर के क़रीव आया, दहलीज के पास पड़ी टहनियों को लांघा, ख़ेमे मे प्रवेश किया और खंखार कर दरवाज़े के सामने गृह-स्वामी के मुख्य स्थान पर दीवार के पास जा बैठा। कठिन मंज़िल के वाद अपने झोंपड़े मे गृह स्थान कितना प्यारा होता है!

मगर मूछों को मरोड़ता हुआ वाख़्तीगुल बहुत देर तक चुप न रह सका। अपने को धीर-गम्भीर बनाये न रख पाकर उसने कनखियों से चूल्हे में दहकते लाल अंगारों को देखा और नाक सिकोड़ी।

"हां तो बीबी कैसे काम चल रहा है... कुछ थोड़ा-बहुत खाने को मिल सकेगा? .."

हातशा का मन हुआ कि भागकर अपने पति के चौड़े तथा मजबूत कंधों से लिपट जाये। मगर उसकी हिम्मत न हुई। उसने दहलीज के पास खड़े रहकर ही आदर और नम्रता से पूछा :

"आपका सफर कैसा रहा?"

"जल्दी करो..." वह जवाब में बुदबुदाया। "मेरे पास वक़्त नही है!"

घर में खाने को जो कुछ भी था, हातशा सब निकाल लाई। भेड़ की ख़ुश्क की हुई पारदर्शी अंतड़ी में वसन्त के दिनो से सम्भाल कर रखे हुए घी की भी उसने कंजूसी नही की। यह घी खाने-पीने की चीजें रखने के सन्दूक मे सबसे नीचे रखा हुआ था। उसने इसे पति के सामने रख दिया और उसके लिए गर्म-गर्म चाय डाली। जब-तब उसने पति की कोहनी, उसके कंधे से अपना तन छुआने की भी कोशिश की। वाख़्तीगुल गर्म चाय को लम्बी-लम्बी चुस्किया लेकर पी रहा था। हातशा बाग-बाग हुई जा रही थी और वाख़्तीगुल से यह बात छिपी न रह सकी।

परिवार के लिए तो आज जैसे पर्व का दिन था। बच्चों

की आखें चमक रही थी, उनकी ख़ुशी तो जैसे बिखरी जा रही थी। जुमबाई और बातिमा चुपके-चुपके एक-दूसरे को पैर मार रहे थे, शरारती ढंग से मुस्करा रहे थे। सेइत ने 'शी-शी' करते हुए उन्हे डाटा, पर खुद उसकी भी बाछे खिली जा रही थी।

बाक़्तोगुल का मन-मोर ख़ुशी से नाच रहा था। बहुत दिनों बाद आज पहली बार उसके मन का बोझ हल्का हुआ था। मगर उसके चेहरे से उसकी इस ख़ुशी को नही भापा जा सकता था। बेकार बोलते जाना उसे पसन्द नही था। वह बैठा हुआ चाय पीता और मूछों पर ताव देता रहा।

उसने एक के बाद एक चाय के तीन प्याले ख़त्म किये, मूछे पोछी, उठा और खेमे से बाहर चल दिया। दहलीज के पास जाकर उसने मुड़े बिना पत्नी से ये शब्द ऐसे कहे मानो कोई बहुत ही तुच्छ बात कह रहा हो:

"बोरी लेकर मेरे पीछे-पीछे आओ।"

हातशा तो बहुत बेसब्री से यही शब्द सुनने का इन्तज़ार कर रही थी। खेमे मे झटपट सब कुछ ठीक करके उसने बड़े बेटे सेइत को हिदायत करते हुए कहा.

"घर से बाहर कही नही जाना। आग का ख़्याल रखना। अगर कोई आकर कुछ पूछे तो कहना कि मा उपले लेने गई है, अभी आ जायेगी।"

खेमे मे सिर्फ बच्चे ही रह गये। उन्होंने हो-हुल्लड मचाना शुरू कर दिया। फटे हुए नमदे के पीछे से कभी चीख़-

चिल्लाहट, कभी रोना-धोना तथा कभी ठहाके सुनाई देने लगे। जुमबाई को तो लड़े-भिड़े बिना चैन नहीं पड़ता था। वह भाई-बहन को खिझाता-चिढाता और उनके हाथों से सूखी मलाई के मजेदार टुकड़े छीन लेता था।

हातशा को निकट ही लुकी-छिपी जगह में, हिमनदी से बनी हुई छोटी-सी सूखी झील के तल में अपना पति मिल गया। तल पथरीला था और उसकी दरारों में पिछले वर्ष की बर्फ जमी हुई थी। झील के खड़े तट जलवायु से जीर्ण-शीर्ण, सींगों की भांति नुकीले और सफेद-गुलाबी पत्थरों से घिरे हुए थे। इन पर उगे हुए घास के लम्बे गुच्छे बकरों की दाढ़ी जैसे लगते थे। जगह ऐसी थी कि आसानी से नज़र न आये और यहां आने का मतलब था घोड़े की टांगें और अपनी गर्दन तोड़ना।

वाल्तीगुल घोड़ी के फैले हुए धड़ के क़रीब उकड़ूं बैठा था। उसने उसकी खाल उधेड़नी शुरू कर दी थी। पथरीले गढ़े में अन्धेरा-सा था, ठंडक थी और कच्चे मांस की तेज़ गन्ध आ रही थी। हातशा झटपट काम में जुट गई और फुर्ती से पति का हाथ बंटाने लगी।

वाल्तीगुल ने जब घोड़ी की अन्तड़िया बाहर निकालीं, तो हातशा को काफ़ी काम करना पड़ा। उन्हें छांटना औरतों का काम है और जितना सम्भव हुआ हातशा ने इसे ढंग से करने की कोशिश की।

साथ ही साथ उसने चपटे पत्थर पर फुर्ती से आग भी जला दी। वह यह नहीं भूली थी कि पति ने एक अर्से से

मांस चखकर नही देखा। उसने बैंगनी रंग का चर्बीवाला गुर्दा और बड़े चाव से चुने हुए मांस के दो-तीन और टुकड़े दहकते अंगारों के अंदर रख दिये —"ख़ुश होकर खाये कुनबे को खिलानेवाला मेरा मालिक," वह सोच रही थी।

वाख़्तीगुल बेचैनी से आग की ओर देख रहा था। धुआं देखकर कही अनचाहे मेहमान यहां न आ धमके... पर वह चुप्पी लगा गया। भूख समझ-बूझ पर हावी हो जाती है, जवान में ताला लगा देती है। भगवान इस आग की रक्षा करना, खा लेने देना यह मास!..

ये दोनों शाम होने तक लगातार काम में जुटे रहे। उन्होने धड़ के टुकड़े कर खाल और मांस को भरोसे की जगह पर छिपा दिया और ऊपर पत्थर रख दिये। केवल हफ़्ते भर के लिए कुछ मांस और अन्तड़िया अलग रखी गई थी। यह हिस्सा बड़ा नही था, मगर चरवाहे के परिवार के लिए वह पर्व के दिन के भोजन की तरह बहुत काफी था। झुटपुटा होने पर वे ख़ेमे मे लौट आये।

चूल्हे के पास दौड़-धूप करती हातशा को देखता हुआ वाख़्तीगुल मूछो में छिपे-छिपे मुस्करा रहा था। हातशा ने पानी से भरी पतीली आग पर रखी, उसमें घोड़ी के स्तन का नर्म-सा मास और हृदय और अयाल के नीचेवाली बहुत-सी चर्बी डाल दी। साथ ही उसने अंगारों पर कलेजी भूनकर बच्चो मे बांट दी।

रात ठंडी थी, मगर ख़ेमे में गर्मी थी, घरेलू आराम था। सेइत टहनियां ला लाकर मा के पास जमा करता जाता

था। लड़का बेशक बहुत लगन से अपना काम कर रहा था, फिर भी वह वाख़्तीगुल को धोखा नहीं दे पाया। उसने बेटे को अपने पास बुलाया, मगर वह तो जैसे मन मारकर उसके पास आया। मेइत अचानक उदास हो गया था।

उस के साथ पहले भी कई बार ऐसा हो चुका था। अजीब था यह लड़का, उम्र के लिहाज से कहीं अधिक चिन्तनशील, चीज़ों को परखने-समझनेवाला और कहीं अधिक समझदार। घर में अगर उदासी का वातावरण होता, बोझिल ख़ामोशी छाई होती, बड़ों में झगड़ा हो गया होता, तो वह अचानक ही नाचने और मेमने की तरह उछलने-कूदने लगता। पर कभी जब घर में हंसी-ख़ुशी होती तो वह घुटनों के बीच मुंह छिपाये बैठा रहता। कोई उठा तो ले उसे जमीन से! जब उसे इस तरह का दौरा पड़ता तो बेशक उसके सामने सोना फेंक दिया जाता, वह उसकी ओर भी आंख उठाकर न देखता! बुरी तरह पिटे हुए पिल्ले या पागल की तरह देखता रहता दर्द भरी और उदास-उदास नजर से। वह तो मानो अंधा और बहरा हो जाता, मां-बाप तक के पुकारने पर घूमकर भी न देखता।

इस समय भी वह सोच में डूब गया था, किसी वयस्क की भांति लुटी-लुटी-सी थी उसकी नजर, बिना मूंछोंवाले होंठों पर दर्दभरी और अपराधी की सी मुस्कान...

वाख़्तीगुल ने उसे अपने पास बिठा लिया।

जुमवाई और ग़ातिमा भी झटपट बाप की ओर लपके और उस के साथ ऐसे आ चिपके, जैसे पिल्ले चूचियों से।

वे श्राग से दूर बैठे थे इसलिए हातशा ने खाल के कोट से इन चारों को ढक दिया।

बच्चे शान्त हो गये। उनकी निकटता से चैन की मधुर और बहुत प्रिय अनुभूति हो रही थी। पतीली में मास उबल रहा था, खेमे मे प्यारी-प्यारी गध बसी थी और हातशा हंसी-मजाक करती हुई फुर्ती से इधर-उधर आ-जा रही थी। बाब्तीगुल को मानो रजाई के पार से उसकी आवाज सुनाई दे रही थी। उसे पता भी न लगा कि कब उसकी आख लग गई।

हातशा ने तग मुहवाली गागर में गर्म पानी डाला और पति को हाथ धो लेने के लिए आवाज दी। बाब्तीगुल ने बड़ी मुश्किल से पलके खोलीं। उसकी आखें धुधली-धुधली थी और धुएंदार लपटों के प्रकाश में उसे ऐसे प्रतीत हुआ मानो उनमें खून तैर रहा हो। नीद मे उसकी पीठ अकड़ गई थी और पैर सुन्न हो गये थे। उसने जम्हाई ली, सिहरा और ऊंघते-ऊघते ही अपने साथ चिपके हुए बच्चों को परे हटा दिया।

"ओह, मैं तो थककर बिल्कुल चूर हो गया हूं.." गागर की ओर चुल्लू बढ़ाये हुए वह बड़बडाया।

"अभी, मेरे प्यारे, अभी. ." हातशा ने बहुत स्नेह, बड़े प्यार से कहा।

पतीली को आग पर से उतारकर उसने तश्तरी मे मांस डालने के लिए झटपट लकड़ी का कलछुल उठा लिया। बाब्तीगुल ने जमीन पर से अपनी पेटी उठाई, मियान में

से काले दस्तेवाली लम्बी, पतली छुरी निकाली और अंगूठा फेरकर उसकी धार की जाच की। छुरी बहुत बढ़िया थी, मास को मक्खन की तरह काटती थी। बाख़्तीगुल ने गर्म पानी से छुरी को धोया।

"अभी, अभी प्यारे..." हातशा ने दोहराया। इसी क्षण बाहर से कुत्तों की भूक सुनाई दी।

बूढ़ी कुतिया और उसके दो पिल्ले एकसाथ भौंक रहे थे। उनकी भूक से बाख़्तीगुल समझ गया कि वे बाड़े की तरफ़ दौड़े आ रहे हैं।

हातशा को तो जैसे काठ मार गया, कलछुल पतीली के ऊपर ही रह गया और वह डरी-सहमी नजर से पति की ओर ताकने लगी।

धरती में से मानो अनेक घोड़ों की टापें फट पड़ी और कुत्तों की भूक उन्ही में डूबकर रह गई। बाख़्तीगुल ने पत्थरों पर रगड़ खाते हुए चरवाहों के भालों की जानी-पहचानी आवाज को साफ तौर पर पहचान लिया। ये भाले स्तेपीवालों के आजमाये हुए हथियार थे।

"मांस को ढक दो... मुसीबत आई कि आई!" उसने दबी-घुटी आवाज में कहा।

हातशा हवा में उड़ते हुए पंख की भांति इधर-उधर डोलने लगी। उसे पतीली का ढक्कन ही किसी तरह नहीं मिल रहा था। घोड़ों की टापों की आवाज निकट आ रही थी। पति खीझता हुआ गुस्से से उसकी ओर देख रहा था। हातशा के तो हाथ-पैर ही फूल गये। कलछुल को हिलाते-

डुलाते और पसीने से तर-ब-तर होते हुए वह मानो बेमानी फुसफुसाहट में दोहराती रही:

"अभी, अभी. ."

वाख़्तीगुल ने दांत पीसकर गाली दी। हालशा ने हड़बड़ी में ज़मीन पर से चटाई उठाई और उसी से पतीली को ढक दिया। उसने कलछुल को पानी से भरी बालटी में फेंककर ऐसे हाथ पीछे खींचा मानो वह जल गया हो। चटाई के नीचे से भाप बाहर निकल रही थी, मगर हालशा का इसकी ओर ध्यान नहीं गया। उसकी टांगों ने बिल्कुल जवाब दे दिया था और वह जहां की तहां ज़मीन पर धम से बैठ गई।

पूछे-ताछे और सलाम-दुआ किये बिना ही अजनबी ख़ेमे में घुसते आ रहे थे। उनके चेहरों से साफ़ ज़ाहिर था कि जल्द ही कोई बिजली गिरनेवाली है। ये कोजीबाक़ी थे, गुंडे, हट्टे-कट्टे, अधेड़ उम्र के, ज़ोर-ज़बरदस्ती और रातों को लूट-मार करनेवाले। इनकी चाल-ढाल में बेहयाई थी, नज़र में नफ़रत। पहली ही नज़र में पता चल जाता था कि ये घूसों और डंडों से बात करते हैं, उन्हें यह बर्दाश्त नहीं कि कोई उनकी बात काटने की हिम्मत करे।

बूटों पर कोड़ा मारता हुआ मोटी तोंद और मोटे चूतड़ोंवाला साल्मेन बड़ी अकड़, बड़े रोब के साथ ख़ेमे में आया। उसकी चमड़े की चौड़ी पेटी चांदी से मढ़ी हुई थी। उसके साथ-साथ ही कई अन्य हट्टे-कट्टे, खा-पीकर ख़ूब मोटे-ताज़े हुए गुंडे भीतर आये। वे वाख़्तीगुल के सामने तनकर खड़े हो गये।



ख़ेमे में जमघट हो गया, मगर पीछे से अन्य लोग रेल-पेल करते हुए बाई के निकट पहुचने की कोशिश कर रहे थे। सबसे बाद में लाल दाढी और पैनी नज़रवाला एक दुबला-पतला आदमी फुर्ती से भीड़ को चीरकर आगे आया। उसने तो वाल्तीगुल की ओर देखा तक नहीं, ज़ोर से नाक बजाई और मानो डुबकी मार कर डर से बांवरी-सी हुई हातशा का कंधा छूते हुए उसके पास अलाव के क़रीब जा लेटा। वह उससे दूर हट गई, मगर उसने उसे आख मारी और बेहयाई से मुस्कराया। मसखरे और लफंगे तो हर जगह ही तरंग में रहते हैं।

सुर्ख़ चेहरेवाले एक हट्टे-कट्टे जवान ने भयानक रूप से आखें तरेरी, नाक फड़फड़ायी और मुंह को टेढ़ाकर अपनी कटी हुई मूंछों पर जवान फेरी और किसी तरह की भूमिका बाधे बिना ही कहा :

"ए, कल रात तुम चरागाह में चरते हुए हमारे घोड़ों के झुण्ड में से एक घोड़ी चुरा लाये और तुमने रखवाले जामान्ताय का सिर भी तोड़ डाला। ज़रा-सी समझ रखनेवाला भी यही कहेगा कि तुम्हारे सिवा यह और किसी की करतूत नही हो सकती। फिर सुबह को पहाड़ों में दो घोड़ों के साथ एक सवार को देखा गया। दिन ढलते समय किसी ने तुम्हारे खेमे के करीब से धुआ निकलता देखा। मतलब यह कि मामला बिल्कुल साफ है। लुटे हुए जवान तो अपने बाप को भी क्षमा नही करते। और हमसे तो तुम्हे इसकी उम्मीद ही नहीं करनी चाहिए ... अब बोलो तो!"

गुडो के इस गिरोह को देखकर वाल्तीगुल डरा-घबराया नहीं, यद्यपि वह अच्छी तरह समझता था कि इन मगदिल और बेवकूफ लोगों से किसी तरह के रहम-तरस की उम्मीद नही की जा सकती। उसने अपने दिल को मजबूत किया और मानो कसम खाते हुए मन ही मन यह दोहराता रहा— "मेरा सच, तुम्हारा झूठ। मैं चाहे कुछ भी क्यो न करूं साल्मेन द्वारा की गई ज्यादती के मुकाबले मे सब कुछ कम ही रहेगा!" इसलिए जवान को उत्तर न देकर उसने बाई से पूछा .

"लगता है कि तुम मुझ पर चोरी का इलजाम लगाना चाहते हो? कब चोर था वाल्तीगुल?"

साल्मेन ने हाफते हुए उत्तर दिया

"अपने को दूध-धोया साबित करने की कोशिश न करो!"

वाल्तीगुल के चेहरे पर पहले की तरह ही दृढ-सकल्प की छाप अंकित रही।

"मेरी क्या हस्ती है तुम्हारे सामने! तुम जो मेरे देनदार हो, मैं भला तुम्हारी क्या बराबरी कर सकता हू!"

साल्मेन तो आन की आन मे लाल-पीला हो गया, गुस्से से उसकी सास तेज हो गई।

"ओह, तुम... तुम. . निरे साप हो .."

"पहले सबूत पेश करो! किसने देखा मुझे घोड़ी चुराते? कौन गवाह है इस बात का?"

"घबराओ नहीं, गवाह भी आ जायेगा .."

"कहां है वह? मेरे सामने आकर बात करने दो उसे।"

"वहुत चालाक बनते हो!" बाई ने उसकी बात काटते हुए कहा। "घोड़ी चुरा लाये, झुण्ड मे खलवली मचा आये... एक ही रात मे इतना नुकसान! यह करतूत तुमने की, जिसे मैंने अपने हाथो से पाल-पोसकर वड़ा किया!"

"वह तो जाहिर है कि तुमने ही पाल-पोसकर वड़ा किया है मुझे। इसी लिए मेरे साथ मनमानी करते हो! तुम इसी के आदी हो! कहो, तो क्यों मेरे पीछे पंजे झाड़कर पड़े हो?"

"तुम्ही ने मेरे साथ ज्यादती की है और उल्टे मुझे ही अपराधी ठहराते हो?"

"जैसे कि तुम किसी चीज़ के लिए अपराधी नही हो!"

बाई बहकी-वहकी नजर से इस चरवाहे को देखता रहा।

"क्या विगाडा है मैंने तुम्हारा?"

"यह पूछो कि क्या नही विगाड़ा। तुमने मेरी आत्मा निकाल ली। सगे भाई की जान ले ली। पीट-पीट कर उसे मार डाला..."

"तो यह बात है! मतलव यह कि तुम्हें मुझसे ख़ून का वदला लेना है?"

वाक़्तीगुल ने सीने पर हाथ रख लिये।

"ख़ुदा ने ख़ुद ही तुम्हारी जवान पर ये लफ़्ज रख दिये... तुमने ख़ुद ही ये शब्द कह दिये।"

"तुम्हारा दिमाग चल निकला है! पेच ढीले हो गये हैं क्या?"

वाल्तीगुल ने दुखी होते हुए सिर हिलाया।

"मरनेवाले को तुमने चैन से मरने भी नही दिया... न तो कोई अच्छे शब्द कहे, न कोई मदद की! आध बरस तक वह तड़पता रहा, तुमने एक निकम्मी भेड तक न भेजी। मरने से पहले दिलासा पाने की उसकी आशा भी बेकार रही..."

बाई ने अपनी फूली-फूली आखों को सिकोड़ा, जबान से च-च की।

"ओह, तो बात को यह रुख़ दे रहे हो... अच्छा तो जोड़ लो हिसाब! बहुत देना है क्या मुझे तुम्हे? शायद मेरी कुल दौलत में से आधी तुम्हारी है? झपट लो, देर न करो! और क्या कुछ लेना है तुम्हे कोशीबाकों से, साल्मेन से?"

भीड मे ख़ुशामद और धमकी भरी हंसी सुनाई दी। मगर वाल्तीगुल के चेहरे पर जरा भी घबराहट नही आई। मै अकेला हूं तो क्या! सचाई मेरे साथ है!

"हिसाब जोड़ने को कहते हो, तो ऐसा ही सही। बीस जाड़ों तक मैने बर्फ ओढ़ी और बर्फ बिछाई, गर्मियों मे रात रात भर पलक भी न झपकी। बीस वसन्तो तक ख़ुशी नहीं देखी, बीस पतझड़ो तक शिकायत नही की। न दिन देखा, न रात, तुम्हारे घोड़ो को चराता रहा। बेचारा तेवनीगुल तुम्हारी भेड़ों के साथ इसी तरह जान खपाता रहा। बारह बरस हुए हुलतगा को मेरी बीवी बने। तभी से यह तुम्हारी भी दासी रही, तुम्हारी मा की सेवा करती

रही। तपेदिक़ से तुम्हारी मां घुलती जाती थी और साथ ही मुरझाती जाती थी मेरी बीवी की जवानी, उसकी ख़ूब-सूरती। इन सब का क्या फल मिला हमें? बस इतना ही न, कि जब तक भूख से दम न निकल जाये, हम इसी चक्की में पिसते रहे?"

"समझ गया, समझ गया... बड़े कमीने, बहुत घटिया हो तुम!" साल्मेन चीख़ उठा और सभी ओर उसकी लारें बिखर गईं। "तुम्हारी रग-रग को पहचानता हूं मैं। तुम्हारी यह हिम्मत! ख़ुद चोर हो और मुझे शर्मिन्दा कर रहे हो। अगर तुम्हारी ज़बान न खींच ली तो कहना... घोड़ी कहां है?"

"घोड़ी अदालत में जाकर मांगना।"

"मांगना? ओह, पाजी, अबे उल्लू! ओ भिखमंगे... तुम हो किस खेत की मूली?"

"तुम्हें अपनी ताक़त का घमंड है, मुझे अपनी सचाई का। हो जाय हमारा इन्साफ़!"

"घबराओ नहीं, हो जायेगा इन्साफ़! बहुत बढ़-चढ़कर बातें कर रहे हो, बड़े बकवासी कहीं के! तुम कोज़ीबाकों से पंजा लड़ाना चाहते हो? अदालत में जाना चाहते हो, इन्साफ़ की मांग करते हो? अच्छी बात है... अदालत भी हो जायेगी! तुम्हारी ज़बान तो कैंची की तरह चलती ही है, इसलिये जाओ अदालत में! वहां तुम्हें, तुम्हारी करतूत का फल मिल जायेगा! घोड़ी फ़ौरन वापिस करो! अदालत में देखा जायेगा कि किस को क्या मिलता है...

आखिरी बार पूछ रहा हूं – घोड़ी कहा है? बोलो!" इतना कहकर गुस्से से आग-बबूला होते हुए साल्मेन ने अपना कोडा लहराया।

बाख़्तीगुल तो हिला-डुला भी नही मानो इस से उसका कोई सरोकार ही न हो। उसने कनखियों से देखा कि बाई के गुडे अपने लट्ठ साधे हुए उसकी ओर सरकते आ रहे है। वे तो सिर्फ इशारे के इन्तजार मे थे।

बाख़्तीगुल ने गहरी सास लेकर कहा:

"तुम्हारी घोडी का तो यहा नाम-निशान भी नही..."

"कहा गई?"

"एक दोस्त को दे दी कि वह कही दूर ले जाये। दोस्त एतबार के लायक है, धोखा नही देगा..."

"झूठ बोलते हो, लानत है तुम पर!"

"झूठ बोलता हूं तो मत पूछो! जवाब नही दूगा।"

तब तन्दूर के पास लेटा हुआ फुर्तीला लाल दाढ़ीवाला कुहनियो के बल ऊचा उठा और अपनी खरखरी आवाज़ मे बेवकूफों की तरह बोला·

"ए गूगे... इनकार करने मे क्या तुक है? कौन बेमतलब घोड़ी भगाकर लायेगा? खूब तमाशा है यह भी! मेरी यहीं मौत हो जाये अगर मैं झूठ बोलू, इसी पतीली में, जिस पर मालकिन की नजर टिकी हुई है, वह है, जिसे मेरी नाक अनुभव कर रही है। नाक मे गुदगुदी-सी हो रही है... यह माग की गध है, जवानो! कसम खाता हूं, यह वही रगीली घोड़ी है... कहां से आई यह तुम्हारे पास, मालिक? बताओ तो, हम सुनना चाहते हैं।"

वाख्तीगुल ख़ामोश रहा, हातशा की नज़र धरती पर टिकी हुई थी। लाल दाढ़ीवाले ने उछलकर भाप के कारण अन्दर की ओर से गीली हुई चटाई को पतीली पर से झटके के साथ उतारा।

"बिल्कुल ऐसा ही है! ढक्कन का कहीं अता-पता नहीं, अनजाने ही ख़ज़ाना हाथ लग गया!... तो प्यारे मेहमानो, तुम्हारे ही लिये तो है। इन्तजार किस बात का है? जवानो, धो लो हाथ। हातशा फुर्ती से तश्तरी बढ़ा दो!"

साल्मेन के गिरोह के लोग एक-दूसरे को कोहनियाते हुए बाई के निकट हो गये।

शर्म की कड़वाहट से वेग़वान हुई हातशा ने बड़ी तश्तरी बढ़ा दी।

लाल दाढ़ीवाले ने ख़ुद मास निकाला और टुकड़ों मे काटकर तश्तरी मे डाला। साल्मेन और कोई दस हट्टे-कट्टे जवान आस्तीनें चढाकर मांस के चर्बीवाले, नर्म-नर्म और भापवाले टुकड़ों पर टूट पड़े।

उन्होंने वाख्तीगुल को तो झूठ-मूठ भी शामिल होने को नही कहा। घर का मालिक एक तरफ खड़ा हुआ भूख की राल निगलता रहा। प्यारे मेहमान अपनी पीठों से उसके सामने दीवार बनाकर खड़े हो गये।

हातशा नफरत और हिकारत मे जमीन ताक रही थी। उसने अपने जीवन में बहुत-सा कमीनापन देखा था, मगर इसकी तो मिसाल ही नही थी!

जवान लोग और बाई खूब मुंह भरकर गाल ...

और चप-चप की आवाज करते हुए मांस हड़पते रहे... कम्बख्तों का पेट भी नहीं फटा!

तश्तरी खाली हो जाने पर साल्मेन ने जोर की डकार ली और वाह्तीगुल से बोला:

"अब हमें अहाते में ले चलो। देखेंगे कि वहां क्या कुछ छिपा है। मेरा कुल-नाश हो जाये, अगर मैं तुम्हारे पास घोड़ी की पूछ भी रह जाने दूं। तुम मेरी आंखों में धूल नहीं झोंक पाओगे, यह तिकड़म नहीं चलेगी... सब कुछ ले जाऊंगा, कुछ भी नहीं छोड़ूंगा। हां, चलो तो, जल्दी से, जब तक जिंदा हो!

भूख के मारे वाह्तीगुल की अन्तड़ियां ऐंठी जा रही थी।

"चाहते हो तो खुद जाकर ढूंढ लो, मिल जाये तो ले जाओ," अपमान के कारण तथा और अधिक बुराई की आशा करते हुए उसने दांत भींचकर कहा। "घूनी आखें और लम्बी-चौड़ी बातें करके तुम मुझे नहीं डरा पाओगे..."

साल्मेन ने झपट कर वाह्तीगुल पर दो बार कोड़ा बरसाया... वाह्तीगुल ने तो अपने बचाव के लिए कुछ भी नहीं किया। वह टकटकी बांधकर बाई को देखता रहा और उनीदेपन के कारण सूजी हुई उसकी आंखों में आंसू झलक उठे। बाई आपे से बाहर होकर बहुत गन्दी गालियां बकने लगा।

वाह्तीगुल को सबसे अधिक डर इसी बात का था, पत्नी और बच्चों के सामने अपनी ऐसी हेठी हो जाने का।

हाथ ऊपर उठाकर हातशा ज़ोर से चिल्ला उठी :

"ख़ुदा तुझे गारत करे!"

संक्षिप्त चीख़ के साथ सेइत चिल्ला उठा :

"कुत्ते का पिल्ला!" और वह साल्मेन की छाती पर झपटा।

वाई ने लड़के को एक ओर को धक्का दे दिया। तब वाख़्तीगुल अपने को काबू में न रख सका और उसने वाई का गला पकड़ लिया।

बडा भयानक लग रहा था इस समय वाख़्तीगुल, पाच लोगों से भी ज्यादा ताकत आ गई थी उसमें। जवान अपने मालिक साल्मेन को फ़ौरन ही नही छुड़ा पाये, वाई के होश जल्द ही ठिकाने नही आये। जैसे-तैसे सांस लेता हुआ और गुस्से से टूटती आवाज मे वाई फिर चिल्ला उठा :

"जरूर जेल की हवा खाओगे तुम! अरे कमीने... तुम्हे सड़ाऊंगा, जमीन में गाड़ूंगा, साइबेरिया में भिजवाऊंगा! अगर ऐसा न करूं तो मेरा नाम बदल देना..."

मगर वाख़्तीगुल अब न तो गालियां ही सुन रहा था और न धमकियां ही। उसे तो बुरी तरह पीटा जा रहा था। उसकी आंखों के सामने लपटों के लहरियों-से उभरते, लहराते और घुल-मिलकर एक हो जाते। फिर वे भी बुझ गये। वह मानो धम से किसी तंग और अंधेरे कुएं में जा गिरा, कुएं की दीवारों से उसका सिर, पीठ और पेट टकराता रहा और वह किसी तरह भी उसके तल तक नही पहुंच पाया।

जबड़े के भयानक दर्द के कारण घड़ी भर को उसे होश आया। उसके मसूढ़ों को तो कोई मानो बर्मे से टुकड़े-टुकड़े किये दे रहा था। इसके बाद फिर से अंधेरा छा गया और आखिर वह कड़ाही की तरह दहकते कुएं के तल में जा गिरा।

इसके बाद वास्लीगुल को किसी चीज का होश नहीं रहा।

४

वास्लीगुल काफी देर बाद होश में आया और रक्तिम धुंधलके में से उसने बड़ी मुश्किल से हातशा को पहचाना। एक ही रात में उसका चेहरा बुरी तरह उतर गया था, वह बुढ़ा गई थी। सिसकियों से उसका गला रुंधा जाता था, उसकी आवाज खरखरी और बैठी-बैठी थी। वास्लीगुल अपनी बीवी की आवाज नहीं पहचान पाया।

खेमे का प्रवेश-पट फाड़ दिया गया था और एक चौड़े सूराख में से हल्की और उदास-उदास रोशनी छन रही थी। जोर से बरसते पानी की धारें चमक रही थीं और दहलीज पर घोड़ों के अयालों से मिलता-जुलता सफेद फेन हिल-डुल रहा था।

वास्लीगुल कराह उठा। काश कि उसे यह रोशनी न देखनी पड़ती – यह दुर्भाग्य की रोशनी।

चूल्हा ठंडा हो चुका था और खाल के भारी कोट के नीचे वास्लीगुल ठंड से ठिठुर रहा था। उसके रोम-रोम में

पीड़ा हो रही थी और उसके जबड़े को तो मानो सड़सी से पकड़ कर खींचा जा रहा था। पति की पीडा को अनुभव करती और धीरे-धीरे मिसकती हुई हातशा उसके चेहरे पर जमा हुआ खून पोंछ रही थी। उसके चेहरे में तो इन्सानी चेहरेवाली कोई बात ही बाकी नहीं रह गई थी। वह तो बैंगनी रंग का टेढ़ा-मेढ़ा पिंड-सा बनकर रह गया था। आखें ऐसे सूजी हुई थी कि बयान से बाहर, गाल पर बड़ा-सा चीर था और उससे अभी तक खून बह रहा था। कोट के कमाये हुए चमड़े पर जमती हुई रक्त की ये बूंदें चमकते हुए काले मनकों के समान लग रही थीं।

वास्तीगुल ने कराहते हुए बड़ी मुश्किल से सिर घुमाया। उसकी आखें किसी को खोज रही थीं।

"वे यहां नहीं हैं ..चले गये सब शैतान..." हातशा ने रुंधे कण्ठ से कहा।

"सेइत..." वास्तीगुल ने उच्छ्वास छोड़ते हुए कहा। "वह यहीं है, शाबाश है उसे!"

पिता की पिटाई करने के बाद गुंडे बेटे पर झपटे। खुद सालमेन ने लड़के से यह उगलवाने की कोशिश की कि मांस कहां है। उसे मार डालने की धमकी दी। मगर सेइत ने तो जबान ही नहीं खोली। बाई गुस्से में लाल-पीला होता रहा और लड़का पगले की तरह हसता रहा।

आंसू पीते हुए हातशा ने बताया—लाल दाढ़ीवाले ने मशाल जलाई और कुत्ते की भांति मांस की खोज करने लगा। उसी ने मांस खोजा। हफ्ते भर के लिए जो थोड़ा-

सा मास छानी की कड़ियों के साथ टागा हुआ था और जो पत्थर के नीचे गुप्त जगह पर छिपाया गया था, उसने सभी खोज लिया। रखवालों ने खाल के रंग से घोड़ी को पहचान लिया। साल्मेन ने सारा मांस और इसके अलावा हमारा घोड़ा और गाय भी ले चलने का हुक्म दिया। घोड़ा इसलिए कि वाई के घोड़ों के झुण्ड मे कमी न हो, गाय अपमान का बदला लेने की ख़ातिर और मांस इसलिए कि वह चोरी का था और चोर के पास नही छोड़ा जा सकता था।

जाने से पहले लाल दाढ़ीवाला और दो अन्य जवान मशाल लिये हुए वाल्तीगुल के पास आये। वे एक-दूसरे की नज़रों में झाकते और कान लगाकर कुछ सुनते रहे।

साल्मेन आया तो लाल दाढ़ीवाले ने उसे तसल्ली देते हुए कहा:

"ज़िन्दा है..."

"इस कम्बख़्त की किस्मत मे ख़ेमे में नही, जेल मे सड़सड़ कर मरना लिखा है। मेरा भाई काज़ी होगा... तुम सब होंगे मेरे गवाह... शिकायत दर्ज करेंगे, मुहर लगायेंगे... इस चोर को निर्वासित किया जायेगा, इसके पैरों मे बेड़ियां डालकर इसे साइबेरिया भेज दिया जायेगा। याद रखना मेरे ये शब्द।"

इतना कहकर वे चलते बने।

वाल्तीगुल ने बच्चों की ओर देखा। इन भोले-भालों को फिर से फ़ाके करने होंगे। अहाते की बूढ़ी कुतिया के पिल्लों की तरह भूखों मरना होगा।

"क्या कुछ भी नही बचा बच्चों के लिए?" वाल़्तीगुल ने पूछा।

"कुछ भी नही...जरा-सा टुकड़ा भी नही," हातशा ने सिसकते हुए कहा। "सभी कुछ समेट ले गये। इतना ही नही, शैतान के बच्चे ख़ेमे की भी बुरी हालत कर गये... ढांचे तक तोड़-फोड़ गये... उसी सूग्रर ने ऐसा करने का हुक्म दिया था। ख़ुदा करे कि उसकी हड्डियों को कुत्ते नोच-नोच खायें! .."

वाल़्तीगुल ने दात किटकिटाये और फिर से बेहोश हो गया। आधे दिन तक वह बेहोशी मे जोर से बड़बड़ाता, ख़ुदा को कोसता और अज्ञात काज़ियो को भला-बुरा कहते हुए यह पूछता रहा:

"ए बताओ तो... अब कहो तो... किसने किसकी चोरी की है?"

वाल़्तीगुल कई दिनों तक हिले-डुले बिना लेटा रहा, सोचता और माथापच्ची करता रहा—अब क्या किया जाये?

मैं अकेला हूं और किसी से कोई मदद मिलने की आशा नही। बोजीबाकों के सामने मुझ अकेले की क्या दाल गलेगी? उनके गांव मे क्या न्याय की आशा की जा सकती है? वे तो सीधे मुह बात भी नहीं करेंगे। बड़े ही घमंडी हैं ये ज़ालिम! दूसरे तो इतने डरे-सहमे हैं कि ज़बान खोलने की हिम्मत नही करते! मुसीबत मे आदमी किसका सहारा लेता है? रिश्तेदारों का। मगर वे हैं कहां? कोई

बीसेक ही खेमे हैं ग़रीब सार वंश के। वे भी जहां-तहां बिखरे हुए हैं उन्हें इकट्ठे करना सम्भव नहीं। वे धनी वंशों के साथ जहां-तहां खानाबदोशी करते हैं, उनकी टहल-सेवा में लगे रहते हैं और गरीबी तथा दुख-मुसीबतों से उलझा करते हैं। किससे ये अपनी बात कह सकते हैं? कोई कान नहीं देगा उनकी बातों पर। उनमें से एक भी तो ऐसा नहीं जिसके पास चप्पा भर भी अपनी ज़मीन हो!

फिर भी सार वंश के लोगों ने जिस स्थिति के सामने घुटने टेक दिये थे, बाल्तीगुल उसके सामने झुकने को तैयार नहीं था। शायद यह दूसरों की तुलना में अधिक साहसी, अधिक हठी था और इसी लिए उसकी जिन्दगी दूसरों से बुरी थी, मुश्किल थी। उसका भाई तेक्तीगुल तो मेमना था और इसी लिए भेड़िये उसे हड़प गये थे। मगर इस छोटे-से हठीले सेइत ने बाप का दिल और बाप का मिज़ाज पाया है। अगर किस्मत साथ देती, तो बाल्तीगुल इन्सान बन जाता, ईमानदारी की ज़िन्दगी बिता सकता, अपने बच्चों को भरपेट खिला-पिला सकता! भगवान की दया से अक़्ल की भी कुछ कमी नहीं है बाल्तीगुल में, बातचीत करने का ढंग भी आता है। बहुत कुछ कर सकता था बाल्तीगुल... मगर किस्मत साथ नहीं देती, कहीं इन्साफ ही नहीं है। इन की लाइलाज बीमारी की तरह गुदा उसे भूख और बेइज़्ज़ती का शिकार बनाता रहता है।

अब तो बात बिल्कुल ही बिगड़ गई थी अब तो यह ज़ालमेन की आंखों में कांटे की तरह खटकेगा। बीज बोने

है तो फल आयेंगे ही! कोजीवाक अपनी पूरी कोशिश करेंगे, एड़ी-चोटी का जोर लगायेंगे। उनके पीछे सत्ता का जोर है, उनका घर का हाकिम और अपनी हुकूमत है। ये सब एक ही थैली के चट्टे-बट्टे हैं, चोर-चोर मौसेरे भाई हैं। अगर वे एक बार मुझे रंगे हाथों पकड़ लेंगे, तो—मैंने किया या नहीं किया, सब कुछ मेरे मत्थे मढ़ देंगे और सबसे पहले तो अपनी काली करतूतें ही। चोरी करेंगे उनके अपने लोग और चोर बनेगा वाख़्तीगुल। तब मुझे जेल की सभी मुसीबतों, आतकों और अपमानों को सहन करना होगा।

साल्मेन जानता था कि वाख़्तीगुल का किस चीज़ से दम ख़ुश्क किया जा सकता। वाख़्तीगुल दुनिया में सबसे अधिक तो जेल से डरता था। मुठ-भेड़ के समय वाख़्तीगुल ने कई बार अपने सामने मौत नाचती देखी थी, मगर उसे कभी झुरझुरी नहीं आई थी। पर अब वह ऐसे कांप रहा था मानो उसे ज़ोर का बुख़ार चढ़ा हो। जेल...बदबूदार और सड़ी हुई क़ब्र... वे उसे जिन्दा ही दफना देना चाहते हैं। वेख्तीगुल की किस्मत फिर भी अच्छी थी।

और फिर साल्मेन, वह तो जो कहता है, करके रहता है। वह तो इस गुस्ताख़ गुलाम के साथ बहुत ही बुरी करके रहेगा ताकि दूसरों को इस से नसीहत मिले। वह उसे जेल में भेजकर ही दम लेगा।

"क्या करूं?" वाख़्तीगुल अपने से पूछता और बीवी तथा बच्चों की भी शर्म न करते हुए फंदे में फंसे जानवर

की तरह ज़मीन पर पड़ा हताशा से छटपटाता रहता।

हातशा तो यही समझती थी कि पति फिर बेहोशी में बड़बड़ा रहा है और पूरी लगन से भगवान को याद करने लगती :

"हे ख़ुदा, इसे बर्दाश्त करने की ताक़त दो—इसे मरने नहीं देना, हे अल्लाह! .."

एक दिन तो वह बिल्कुल ही हिम्मत हार गया। हातशा को अपने पास बुलाकर ऐसी अट-शंट बकवास करने लगा जिसे पहले ज़बान पर लाते हुए उसे शर्म आती थी।

"नहीं बीवी...मेरी क्या बिसात है उन के सामने... मैं कर ही क्या सकता हूं!.."

ऐसे शब्द सुनकर बीवी को पहली बार पति के बारे में डर महसूस हुआ।

"क्या किसी से भी मदद नहीं ली जा सकती?"

बाख़्तीगुल ने कोई जवाब नहीं दिया, सोच में डूब गया।

ऐसे लगा कि उसने कुछ तो सोच ही लिया है! वह फ़ौरन यह समझ गई। इसके बाद बाख़्तीगुल न तो कराहा और न छटपटाया। वह घावों-खरोंचों से भरी हुई छाती को सहलाता हुआ चुप्पी साधे रहता।

एक हफ़्ता गुज़रा तो बाख़्तीगुल ने बिस्तर छोड़ दिया। उसका रंग-ढंग देखकर हातशा समझ गई कि उसका विचार ठीक ही था। वह फिर से लम्बे सफ़र की तैयारी करने लगा।

चोर कोज़ीवाक उसका विश्वस्त और आज़माया हुआ घोड़ा तो अपने साथ ले गये थे, मगर वाप्तीगुल के पास उसके जैसा ही एक और बढ़िया घोड़ा भी था। बड़ा जोशीला और तेज़ चालवाला कुम्मैत घोड़ा। उसने ज़रूरत पड़ने तक उसे अपने एक विश्वसनीय पड़ोसी मित्र के झुण्ड में छोड़ रखा था।

यह घोड़ा बहुत ही बढ़िया, बड़ा ही सुघड़, दुबला-पतला, चौड़ी छाती और पतले टखनोंवाला था। असीम स्तेपी में रहनेवाले गरीब से गरीब चरवाहे के पास भी दो-तीन घोड़े हो सकते थे, किन्तु ऐसा घोड़ा तो हर बाई के पास भी नहीं था। शायद हल्केदार ही ऐसे घोड़े पर सवारी करता था।

अब कुम्मैत पर ज़ीन कसने की बारी आ गई थी। वाप्तीगुल ने सुबह-सवेरे ही पुराने किस्म की बन्दूक में छर्रे भरे और जबड़े के घाव पर तेल लगाकर उसे मकड़ी के जाले से ढक दिया। सेइत ने उसे घोड़े की लगाम पकड़ाई और वाप्तीगुल ने सिर हिलाकर उस से विदा ली। कुम्मैत वाप्तीगुल को जंगलों से ऊपर, बहुत ऊंचे पहाड़ों और दुर्गम स्थानों की ओर ले चला।

झाड़-झंखाड़ और कंटीली झाड़ियों को लांघते हुए घुड़सवार को काफ़ी देर लग गई। दोपहर होने तक ही वह अगम्य झाड़-झखाड़ से निकल पाया। अब उसके सामने वनस्पतिहीन, विराट और आसमान की ओर जाती हुई खून की तरह लाल चट्टानें थीं।

अपने सिर के ऊपर उनको लटकी हुई देखकर आदमी बरबस झुक जाता है। उनके पास जाते ही डर लगता है। ऐसी अनुभूति होती है कि उनके ख़ामोशी के सदियों पुराने साम्राज्य में खलल डालना गुनाह है। यहां न तो इन्सान नज़र आता था और न ढोर ही। लाल चट्टानों में मनमर्ज़ी से घूमनेवाले जंगली जानवर रहते थे, पर कोई शिकारी यहा भूले-भटके ही आता था। यहां पहुंचना कठिन था, लेकिन यहा से लौटना और भी कठिन।

बाल्तीगुल दबे पाव इस पथरीली विराट काया के पास पहुचा, चुपके-चुपके नीचे उतरा और छायादार कन्दरा में घोड़े को बाधा। उसने लोमड़ी की खाल की टोपी उतारी, उसे क़मीज़ के नीचे दबाया, पीठ पर पेटी के साथ बन्दूक कसी और ऊपर चढ़ने लगा। चढ़ाई में ज़ोर लगाने के कारण उसके जबड़े के घाव से ख़ून की पतली-सी नमकीन धार बह कर बाल्तीगुल के मुह के करीब पहुच गई। बाल्तीगुल ने उसे चाट लिया।

उसने थके हुए घोड़े की भांति हाफते हुए चट्टान की गजी चोटी पर चढ़ कर दम लिया।

अब उसे भूरे पत्थरोंवाला वह विस्तृत गड्ढा दिखाई दिया, जो नीचे से नज़र नहीं आता था। उसे मालूम था कि इस गड्ढे के पीछे ज़ीने के समान और हरियालीहीन यह ढाल है, जहा ढेरों-ढेर पहाड़ी बकरे रहते हैं। उस पर पत्थरों में गायब होनेवाली अनगिनत पगडंडियों का जाल-सा बिछा हुआ है।

वाह्तीगुल ने चट्टानी लहरों को बहुत ध्यान से देखा। गड्ढे के उस पार, उस वीरान ऊंचाई पर कोई नहीं था। सभी कुछ निर्जीव था, न कहीं कोई धड़कन थी, न गति। सभी ओर सुनसान था, नेत्रहीन और मूक... कितनी बार ही वाह्तीगुल यहां बेकार भटकता रहा था, रेंग-रेंगकर यहां पहुंचा था और नुकीले पत्थरों ने उसके शरीर को खरोंचा था। तब उसे इसी बात की खुशी हुई थी कि वहां से जीता-जागता और सही-सलामत लौट आया था। मगर इस बार उसे खाली हाथ नहीं लौटना था। इस बार वह पत्थर से भी ज्यादा दृढ़ता का सबूत देगा।

इर्दगिर्द के पत्थरों के समान ही आकाश भी भूरा-भूरा था उदास था। पैवन्दों लगा भूरा चोगा पहने, रक्तहीन पीले-पीले चेहरेवाला, दुबला-पतला और हड़ीला वाह्तीगुल खुद भी पत्थर जैसा प्रतीत हो रहा था। पीठ पर से बन्दूक उतार कर वह छिपकली की भांति दबे-दबे, चोरी चोरी और आहट किये बिना गड्ढे के किनारे-किनारे चलने लगा। पर्वतो, पर्वतो! इस बेचारे को थोड़ी भीख ही दे दो! ..

वाह्तीगुल जब गड्ढे के उस पार पहुंचा तो दिन ढलने लगा था। अब उसे अपने सामने पहाड़ी बकरों की पगडंडियां दिखाई दीं।

ऐसा भी होता है कि किस्मत बदकिस्मत का भी साथ दे देती है। वाह्तीगुल के एकदम नीचे पारदर्शी सलेटी धुंध में तीन पहाड़ी बकरे दिखाई दिये—तबरीला

सीगोंवाला नर और छोटी-छोटी पूछों तथा पैने खुरोंवाली दो मादाये। वे जिधर से आये थे, उसी तरफ को मुंह करके अभी अभी रुके थे। चौकन्ने, सजग और पलक झपकते मे छलागे मारते हुए वे आंखों से ओझल होने को तैयार थे। उनके गठे हुए झबरीले शरीरो मे स्प्रिग की सी लोच थी, उन्हे तो मानो पंख लगे हुए थे।

"खुदा मदद करो .." उसने बन्दूक को सीधा करते और निशाना साधते हुए फुसफुसाकर कहा।

उसने नर का निशाना साधा, मगर बहुत ही हड़बड़ी मे—उसके हाथ कांप रहे थे, बन्दूक की नली हिल-डुल रही थी और बकरे ने उसे देख लिया। बुजदिल का अपना ही एक उसूल होता है—वह दूसरी बार मुड़कर कभी नहीं देखता। जैसे ही उसने यह महसूस किया कि कुछ गड़बड़-घुटाला है, वैसे ही वह एक ओर को कूदा और लम्बी-लम्बी छलागें मारता फुर्ती और तेजी से जीने जैसी ढाल से नीचे भाग चला। मादाये उसी क्षण उससे आगे निकल गई और पिस्सू की भांति छलागे मारती आगे-आगे दौड़ने लगीं।

वाल्तीगुल के हाथ अब मजबूत हो गये थे, वह लगातार नर की दिशा मे ही बन्दूक को घुमाता जाता था। जब वह मादाओं को अपने पास बुलाते हुए एक ऊंची चट्टान पर पहुंचा तो बन्दूक से लपट निकली और ज़ोर का धमाका हुआ। धुएं का नीला-सा बादल पत्थरों के बीच धीरे-धीरे फैल गया और धुएं मे से वाल्तीगुल तेज़ी से भागे जाते बकरे को सिर के बल लोट-पोट होकर गिरते देखा।

वाफ़्तीगुल को अपनी सुध-बुध न रही और इस आशंका से कि बकरा उठेगा और भाग जायेगा वह तेजी से नीचे की ओर भाग चला। एक बगल पड़ा हुआ बकरा बुरी तरह तड़प रहा था। वाफ़्तीगुल ने छुरी निकाल कर उसकी गर्दन पर वार किया। सलेटी पत्थरों पर सुर्ख खून फैल गया। बकरा छटपटाया और उसने दम तोड़ दिया। हांफता हुआ वाफ़्तीगुल भी उसके करीब ही ढह पड़ा।

इसके बाद उसने बकरे की खाल उतारी, अंतड़िया निकालीं, धड़ को दो हिस्सों में काटा और मांस को खाल में लपेटा। वह दर्रे के रास्ते से घोड़े को लाया, मुश्किल से उस पर मांस लादा और उसे बालों के फंदे से बांधा।

घोड़े पर सवार वाफ़्तीगुल ने फिर से झाड़-झंखाड़ को लांघते हुए ही थोड़ा आराम किया। मगर वह घर की ओर नहीं गया...

शाम होते-होते वाफ़्तीगुल छायादार और तेज हवाओं से रक्षित घाटी में पहुंच गया। यहां नदी के तट पर एक घनी गांव बसा हुआ था। यह पड़ोस के चेलकारुं हल्के के हल्केदार जारासबाई का गांव था।

जारासबाई विख्यात व्यक्ति था, सो भी न केवल अपने हल्के में और न केवल अपने ओहदे, अपने पद के कारण। सारे इलाक़े में ही उससे ज्यादा मशहूर कोई हाकिम, मिर्जा, हाजी या बाई नहीं था। स्वामी, व्यापारी और योद्धा के रूप में भी उसकी बड़ी प्रशंसा की जाती, सच तो यह है कि न तो धन-दौलत, न मान-सम्मान,

न समझ-बूझ की दृष्टि से ही कोई उसकी बराबरी कर सकता था।

इस आदमी से हर तरह की आशा की जा सकती थी—भलाई की भी, बुराई की भी, नेकी की भी और बदी की भी, सो भी ढेरों-ढेर!

"देखता हूं किस्मत आजमाकर..." गांव के पास पहुंचते हुए वाल्तीगुल ने सोचा। "तंग आ गया हूं अकेले ही सब कुछ सहते-सहते..."

लगता था कि जारासबाई इसी नदी के तट पर जाड़ा बिताने जा रहा था। गाव के बहुत से निवासी पतझर की ठंड से बचने के लिये मिट्टी के झोंपडों मे बस भी चुके थे। शाम के झुटपुटे में सभी लोग घरों से बाहर रोशनी मे निकल आये थे।

सबसे बड़े आंगन के फाटक पर वाल्तीगुल को एक लम्बा-तड़ंगा और मोटा-तगड़ा आदमी दिखाई दिया, महंगे फर की टोपी और अस्त्राख़ानी फ़र का बर्फ-सा सफेद कोट पहने हुए। उसका चेहरा एकदम सुर्ख़ था, चमकता हुआ, बहुत ही गम्भीर, बड़ा ही रोबीला। यह जारासबाई था! वैसे तो वह वाल्तीगुल का हमउम्र ही था, मगर क्या ठाट थे उसके, जरा कोई पास तो फटके... बहुत-से लोग उसे घेरे हुए थे—दो प्रतिष्ठित बुजुर्ग, सत्तरह वर्ष का उसका सबसे बड़ा, हृष्ट-पुष्ट बेटा और बहुत से जवान और बूढ़े टुकड़खोर, जो मटमैले चूहों की तरह थाटे भी इस सफेद बोरी को घेरे हुए थे।

वाख़्तीगुल ने वड़े श्रदव से सलाम किया। पहाडी वकरे के टेढ़े सींगों पर नज़र डाल कर जारासबाई ने सिर हिला दिया। श्रीगणेश तो कुछ वुरा नही हुश्रा था।

फाटक में से तंग मुह की गागर उठाये हुए वाई की पहली बीवी सामने श्राई, उभरा-उभरा जोवन श्रौर सजा-संवरा हुश्रा चेहरा। उसने भी ख़ून से लथपथ टेढ़े-मेढ़े सींगोवाले सुन्दर पहाड़ी वकरे में दिलचस्पी जाहिर की श्रौर प्रशंसा से च-च.. करते हुए धीरे-धीरे घोड़े के गिर्द चक्कर लगाया। कुछ श्रन्य लोगों ने भी जिज्ञासावश ऐसा ही किया।

वाख़्तीगुल ने वाई की बीवी को भी श्रादर से नमस्कार किया।

"लगता है कि यह तुच्छ-सी चीज़ श्रापको पसन्द है! श्राज सुवह श्रापके गाव की श्रोर श्राते हुए मैंने सोचा कि शायद वहुत श्ररसे से श्रापने जंगली शिकार नही देखा होगा, पहाड़ी वकरे का मांस नहीं चखा होगा... वस, मैंने घोड़े को पहाड़ों की श्रोर मोड़ दिया... कोई खास श्रच्छा शिकार तो हाथ नही लगा... मगर श्रापको नापसन्द न हो तो ले लीजिये..."

बाई की बीवी ने छिपी-छिपी नज़र से पति की श्रोर देखा मानो उसकी इजाज़त चाहती हो श्रौर डरती हो कि कहीं वह इनकार न कर दे। वाख़्तीगुल मन ही मन मुस्कराया—नहीं, इसे इनकार नहीं करेगा।

"ले लो... किया ही क्या जा सकता है..." जारासवाई ने अलसभाव से कहा और इर्दगिर्द के लोगों को आख मारकर साथ ही यह भी जोड़ दिया—"जानवर है तो हमारे ही पहाड़ों का। अगर यह ख़ुद न देता, तो हम वैसे ही छीन लेते।"

सब ने जोर का ठहाका लगाया। वाल्तीगुल के दिल से मानो बोझ हट गया।

एक बुज़ुर्ग ने बेकरारी से हाथ झटककर कहा :

"लड़कियां कहा हैं? ले जायें न इसे..."

वाल्तीगुल ने अनुमान लगा लिया कि यह कैरनबाई है, बड़ा ही कन्जूस-मक्खीचूस, दमड़ी-दमड़ी को दांत से पकड़नेवाला। वह जारासबाई के दिवगत बाप का बहुत ही पक्का दोस्त था। अब सारे पशुओं का यही प्रबन्धक था और जारासबाई का दायां बाज़ू माना जाता था।

"कदीशा, ऐसा सोचना ठीक नहीं," जल्दी-जल्दी बोलते हुए कैरनबाई ने जारासबाई की बीवी से कहा, "कि अगर एक आदमी ने कोर्ज़ीबाक़ी की बेइज़्ज़ती की, तो क्या उसके हाथ की हर चीज़ बुरी, छूने के नाकाबिल हो गई? इसे दुत्कारना नहीं चाहिये! कोई आदमी इसे मना लगे तो यह उसे अपना आख़िरी घोड़ा तक दे सकता है। यह सच है कि वह ज़िद्दी है, मगर कहते हैं कि गुस्सा ज़िद्दी तो होते ही हैं..."

बाग-बाग होते हुए वाल्तीगुल ने उसे बहुत झुक कर सलाम किया और बोला :

"शुक्रिया, बड़े मियां। अब मैं क्या कहूं! आपने मेरी बात ज्यादा अच्छी तरह से कह दी है। बेशक मैं धुन का पक्का हूं, मगर किस्मत ही साथ नहीं देती। इसीलिये मिर्ज़ा के सामने अपने मन का भार हल्का करने आया हूं। पर आप की अक़्लमदी के सामने मैं चुप रहा हूं। आप तो मुझे बहुत ही अच्छी तरह समझते-पहचानते हैं। जैसा आप चाहेंगे, वैसा ही होगा!"

हल्क़ेदार का बेटा दो नौकरानियों को आवाज देकर बुला लाया। उन्होंने घोड़े पर से बकरे को उतारा और अहाते की ओर ले चली। बाई के शैतान बेटे ने बकरे के सिर को अपने पेट के साथ सटाया और खिलवाड़ करते हुए इन नौकरानियों की पीठों में बकरे के सींग चुभोने लगा।

जारासबाई इस तमाशे को देखता रहा और बाज़्तीगुल से उसने एक शब्द भी नहीं कहा। शायद वह किसी तरह से उसका अपमान नहीं करना चाहता था, मगर हल्केदार हर ऐरे-गैरे को मुह भी तो नहीं लगा सकता था। बाज़्तीगुल न तो ख़ुद ही कोई बड़ा आदमी था और न कोई बहुत बढ़िया तोहफ़ा ही लाया था!

मगर दूसरा बुजुर्ग बाज़्तीगुल की ओर सहानुभूति से देख रहा था। यह सारसेन था, इस इलाके का एक बहुत ही पुराना क़ाज़ी। क़ाज़ियों के चुनाव के समय जारासबाई उसके अनुभव और मुख्यतः उसके यार-दोस्तों के बड़े दायरे को ध्यान में रखते हुए हमेशा उसका पक्ष लेता था।

जारासबाई और सारसेन बराबर की चोट थे।

"बेचारा जवान..." सारसेन ने अपनी दाढ़ी पर हाथ फेरते हुए कहा। "नेक ख़्याल तो आधी कामयाबी होता है और मुझे लगता है कि तुम्हारे बहुत-से नेक इरादे हैं। पहले भी तो कई बार ऐसा हुआ है कि दुख-मुसीबतों के मारे और जिन्दगी के कड़ुवे घूंट पीनेवाले कई जवान परेशान होकर अपने गांव को छोड़कर भागे हैं। कहीं तुमने भी तो ऐसा ही नहीं सोच लिया?"

"बड़े मियां, बात तो कुछ ऐसी ही है," वाख़्नीगुल ने कनखियों से हल्क़ेदार की ओर देखते हुए जवाब दिया। "सोचा तो मैंने बहुत कुछ है, काफी कठिन भी... मगर आपकी नेकी का बदला चुकाने में कोई कसर नहीं छोड़ूंगा, अपनी पूरी जान लड़ा दूंगा।"

हल्क़ेदार ने त्योरी चढाई। आख़िर उसने वाख़्नीगुल से कहा:

"जो कुछ इस वक़्त कह रहे हो वह तो सच ही लगता है। देखेंगे खाने की मेज़ पर क्या कहोगे। ज़िद्दी, चलो हमारे साथ घर में..."

वाख़्नीगुल बेहद ख़ुश होता हुआ बाई के पीछे-पीछे चल दिया।

"मैंने तो यहां आते ही बहुत कुछ कह डाला, मिर्ज़ा। मन पर बहुत बोझ जो था!"

"अच्छा किया... शाबाश," बाई के मूड को देखते हुए ग़ुलामदियों ने जवाब दिया।

मालिक के पीछे-पीछे ठीक अपने रुतबे के मुताबिक़ वे लोग भटाते और फिर उसके घर में गये।

वास्तीगुल को ऐसे घर में जाने का बहुत ही कम सौभाग्य प्राप्त हुआ था, शायद एक या दो बार ही, इसलिये वह दहलीज़ पर ही ठिठक कर रह गया। बड़े-से साफ़-सुथरे और गर्म कमरे में मिट्टी के तेल का लैम्प जल रहा था, सूरज की तरह लौ देता हुआ। बाई की ऊंची गद्दी पर रंग-बिरंगे गद्दे बिछे हुए थे। दहलीज के पास से ही लाल कालीन बिछा हुआ था – उसे तो पैर से छूते हुए डर लगता था। दायीं ओर को बहुत बढ़िया और निकल की पालिशवाला रूसी पलंग था और उसके ऊपर दीवार पर बेल-बूटोंवाला और भी बढ़िया कालीन टंगा हुआ था। वसन्त में फूले और ओस में चमकते हुए चरागाह की भांति यहां हर चीज़ सुन्दर, चमक-दमकवाली और मनमोहक थी।

चरवाहे के धुए से काले और ठंडे तथा फटे-पुराने खेमे में रहनेवाले वास्तीगुल के लिये ऐसे सजे-सजाये घर में आना बड़ा ही सम्मान था। ऐसे स्वर्गिक सुख के वातावरण में रात बिताना तो और भी बड़ा सौभाग्य था। जब उसे तरह तरह के पकवानों से सजी हुई मेज़ पर अन्य मेहमानों के साथ बिठाया गया तो वह मानो भूल ही गया कि उसके पेट में चूहे कूद रहे हैं, यद्यपि उसके मुंह में पानी भरा हुआ था। वह खाने पर टूट नहीं पड़ा। सभी समझ रहे थे कि इसके लिये उसे कैसे अपना मन मारना पड़ रहा है। शुक्र है ख़ुदा का कि बाई की बीवी ने ख़ातिरदारी में कोई कसर न रखी। वास्तीगुल ने उचित ढंग से मेज़बान

को धन्यवाद दिया और वह अपनी दर्द कहानी कहता रहा, सुनाता रहा... कटु और जहर बुझे शब्द अपने-आप ही उसके मुह से निकलते रहे, निकलते रहे।

सभी बड़े चाव से, बहुत दिलचस्पी से उसकी बातें सुन रहे थे मानो वह कोई खास खबर या अनोखी घटना सुना रहा हो। जब उसने जेल का भयानक नाम लिया तो बाई की बीवी चीखी, 'ऊई मा' कह उठी, बुजुर्गों के माथे पर बल पड़ गये और उन्होंने दुखी होते हुए सिर हिलाये। काजी सारसेन ने अपनी दाढ़ी थाम ली। स्तेपी में रहनेवाले एक दूसरे के लिये मौत की कामना कर सकते हैं, मगर जेल की नहीं...

वाल्तौगुल मन ही मन हैरान होता हुआ सोच रहा था–यह क्या मामला है कि बाइयों को उसपर दया आ रही है, वे बेइंसाफी को समझ रहे हैं, अनुभव कर रहे हैं! यह घर, यह दावत, उनकी ऐसी चिन्ता, यह सब कुछ कहीं सपना तो नहीं है?

"मैं फटेहाल हूं, न कोई संगी-साथी है, न कोई मददगार..." वाल्तौगुल कहता रहा, "झुण्ड से बिछड़ जानेवाले बछेरे की सी हालत है मेरी... एक ही चाह है मेरी–किसी ताकतवर के साथ चिपक जाऊं, वहीं कोई खूंटा मिल जाये मुझे। इसके लिये अपनी जान तक देने को, सब कुछ करने को तैयार हूं मैं।"

बाई की बीवी और जेठे बेटे ने जो घर का लाड़ला था बुजुर्गों का इन्तजार किये बिना ही खुले तौर पर कोठेसारों

को भला-बुरा कहना शुरू कर दिया। बाई की बीवी और बेटा इस जाने-माने चरवाहे को एकटक देख रहे थे। ऐसे नौकर और मित्र पर किसी को भी गर्व हो सकता है।

काज़ी सारसेन ने भी मेज़बान के बोलने से पहले ही कहा :

"ख़ैर नौजवान, देखेंगे कि तुम्हारे मुंह में क्या है और ख़याल में क्या! रोना-धोना बन्द करो और हमारे मालिक का दामन थाम लो। कसकर थामे रहना इसे! जीवन में भला-बुरा और ऊंच-नीच देखे हुए तथा तुम जैसे चुस्त और फुर्तीले, शैतान और भगवान से न डरनेवाले लोगों की उसे बड़ी ज़रूरत भी है... अगर दिल लगाकर ख़ूब मेहनत से काम करोगे तो मालिक का छोटा भाई और उसके बेटे का चाचा, घर का अपना ही आदमी बन जाओगे। तब तुम्हारा कोई बाल भी बाका नहीं कर पायेगा! उसकी छत्र-छाया में न तो कोई अदालत और न कोई सत्ता ही तुम्हारा कुछ बिगाड़ सकेगी। ख़ुद गोरा ज़ार भी तुम्हें नहीं पा सकेगा, न ज़िन्दा न मुर्दा! ख़ुदा ने चाहा तो आज नहीं तो कल अपने दुश्मनों से हिसाब चुका लोगे, उन्हें उनकी काली करतूतों की याद दिलाओगे, उन्हें अपनी ताकत दिखा पाओगे।"

बाइतीगुल गुन रहा था, उसे अपने कानों पर विश्वास नहीं हो रहा था। आख़िर इतनी मेहरबानी किसलिये? यह प्रतिष्ठित बुज़ुर्ग क़ाज़ी किस बात का संकेत कर रहा है? "घर का आदमी हो जाओगे... आज नहीं तो कल..."

वाल्तीगुल को मालूम था कि बहुत अर्से से कोज़ीबाकों और जारासबाई की आपस में लगती चली आ रही है। वे इस इलाक़े के दो छोर, दो तट और दो पर्वत थे। ऐसे ही तो वाल्तीगुल यहां नहीं भागा आया था। जारासबाई मुझ बदक़िस्मत, मुझ गरीब भगोड़े का भाई बनेगा? मामला ऐसा रुख़ ले लेगा, उसने ऐसी आशा नहीं की थी। उसने जो चाहा था, किस्मत उससे कहीं ज्यादा मेहरबान साबित हो रही थी।

वाल्तीगुल तो जेल के डर से भागकर यहां आया था और अपने रक्षक का दास बनने को तैयार था। पर उसकी ओर तो इस तरह हाथ बढ़ाया गया मानो स्तेपी में उसके लिये इज्जत भी हो, इन्साफ़ भी हो!

मगर जारासबाई ने अपना ख्याल जाहिर करने की जल्दी नहीं की। वह पहले की तरह ही दूसरों की बातें मानो उपेक्षापूर्वक सुनता रहा। उसके गर्वीले और उपहासपूर्ण चेहरे से यह समझ पाना कठिन था कि उसका क्या विचार है। इतना भी अच्छा है कि वह सुनता जा रहा है, टोकता नहीं है... मगर मुझ ग़रीब के सब्र की परीक्षा लेना चाहता है, तो भी ठीक है। हो सकता है कि असमंजस में हो? मुमकिन है कि सुनता रहे, सुनता रहे और फिर मुंह फेर ले। न अपनाये, न इनकार करे...

उस शाम को वाल्तीगुल यह न जान सका कि बाई का क्या विचार है। बाई हंसता, मज़ाक़ करता, मेहमानों और टुकड़खोरों से विदा लेकर सोने चल दिया। जाते-जाते उसने

वाग्तीगुल की ओर उसी तरह ज़रा सिर हिला दिया, जैसा कि उसने मुलाकात होने पर किया था। सभी ए.श-ए.श मेज पर से उठे—बाई खुश था, बड़े रंग में था, उसका मूड बहुत अच्छा था।

तड़के से ही बाई के अहाते में फरियादी आने लगे। उनका ताता-सा बंधा रहा। वाग़्तीगुल ने अपने कुम्मैत घोड़े पर जीन कसा और यह जाहिर करते हुए एक ओर को खड़ा हो गया कि बाई जैसा कहेगा वह वैसा ही करेगा—जाने को भी तैयार और रुकने को भी। नाश्ते के बाद बाई बाहर आया। "थोड़ी उम्मीद ही बंधा दे..." वाग़्तीगुल की नजर यह दुआ मांग रही थी। जारासबाई उसके पास से निकल गया, उसने उसकी ओर आंख उठाकर देखा भी नहीं। मगर वाग़्तीगुल ने दूसरों के जाने तक इन्तज़ार किया और फिर से नजर के सामने आया।

"क्या चाहते हो तुम, भले मानस?" थकान से हांफते हुए बाई ने पूछा।

वाग़्तीगुल तनकर खड़ा हुआ और उसके नज़दीक आकर बोला:

"क़सम खाकर कहता हूं कि ज़िन्दगी भर तुम्हारी खिदमत करूंगा। जहां मनमाने भेज देना। मनमाना हुक्म देना। तुम्हारा छोटा भाई और तुम्हारे बेटे का चाचा बनकर रहूंगा... बुज़ुर्ग सारसेन ने क्या ऐसा ही नहीं कहा था?"

"इसकी काफ़ी चर्चा हो चुकी है," ... ने रुखाई से जवाब दिया। "तुम्हारी ..."

रखूंगा। मगर...कुछ इन्तजार करना होगा, अफ़वाहों और शोर-शराबे के खत्म होने तक। छोटी-मोटी बातों को लेकर मैं इस समय कोजीबाको से उलझना नहीं चाहता। वक्त आने पर मैं तुम्हें ख़ुद बुलवा भेजूंगा, चैन से सोने नहीं दूंगा। तब देखेंगे कि कैसे तुम अपनी कसम निभाते हो... फिलहाल इतना ही कहूंगा कि तुम हम से कटे-कटे न रहना, अक्सर आते रहा करो। मेरे लोगों को तुम पसन्द आये हो, घरेलू काम-काज में उनकी मदद करना, वे तुम्हारे लिये कोई न कोई काम ढूंढ लिया करेंगे। बाद में मैं तुम्हें कोई ढंग का काम दे दूंगा। अच्छा, अब जाओ।"

बाल्तीगुल की ख़ुशी का कोई ठिकाना न रहा, उसे तो आभार प्रकट करने के लिये शब्द तक न मिले।

"प्यारे... मेहरबान हल्केदार... तुम तो मेरे लिये बाप से भी बढ़कर हो.. सोचता था...मुंह फेर लोगे... बढ़-चढ़ कर बातें करने के लिये माफी चाहता हूं,"—उसने घोड़े की लगाम पकड़कर खींची। घोड़े ने शान से सिर झटका। "तुम्हारे प्यार, तुम्हारे इस बर्ताव के लिये बड़ा शुक्रगुज़ार हूं .. अगर मैं इसका बदला न चुकाऊं, तो ख़ुदा मुझे कभी माफ न करे... इस घोड़े पर तुम्हारे बेटे जागाज़ी को बैठाना चाहता हूं! जब मुझे तुमने अपना ही मान लिया, तो फिर क्या बात है, ले से यह घोड़ा, करे इसपर सवारी..."

बाई चुप रहा, न उसने स्वीकार किया, न इनकार, मगर उसके चेहरे पर ख़ुशी झलक उठी। बाल्तीगुल नतमस्तक

घर की ओर गया और उसने जागाजी को ज़ोर से पुकारा। घोड़ा बड़ी तेज़ चालवाला था, दुर्लभ था। इसीलिये उसे उपहार में देते हुए बड़ी ख़ुशी हो रही थी।

बाप की तरह बाई के बेटे ने भी न तो इनकार किया और न धन्यवाद ही दिया। मगर चेहरे से ज़ाहिर था कि लड़का बहुत ख़ुश है। बेशक वह अभी किशोर था, उसकी खेलने-खाने की उम्र थी, वह अक़्ल का कच्चा था, मगर घोड़ों की उसे ख़ूब समझ थी।

बाई की बीबी ने भी वाल्तौगुल को ख़ाली हाथ नहीं जाने दिया। उसने घर के बने सहसुनवाले मासेज और बछेरे के कुछ बड़े-बड़े और लज़ीज़ टुकड़े उसके साथ बांध दिये। वाल्तौगुल स्नेह-स्निग्ध और हर्ष-विभोर होता हुआ घर लौटा।

दो दिन बाद जांगाज़ी उसके ख़ेमे में आया, कुछ देर बैठा, बातचीत करता रहा और बाप की तरफ़ से सलाम कहा। उसके बाद ख़ेमे से बाहर निकला, कुम्मैत घोड़े को खोला, उछलकर उस पर सवार हुआ और अपने गांव की ओर चल दिया। तेज़ घोड़ा उसके नीचे ख़ूब जंच रहा था, बाज़ की तरह उड़ा जा रहा था।

५

वाल्तौगुल के लिये अर्जीब-सा और गुप्त-भेद का अनजाना-सा जीवन आरम्भ हुआ।

पहले जाड़े में जारासबाई ने उसे कुछ दूर-दूर ही रखा, अपने दफ़्तरी काम-काज के नज़दीक नहीं आने दिया। यह तो ज़ाहिर ही है कि याक़्तीगुल हाथ पर हाथ धरे नहीं बैठा रहता था। लेकिन अब उसे भूख और अपमान का जीवन नहीं बिताना पड़ता था। उसकी पुरानी कुख्याति धीरे-धीरे मिटने और अतीत की कहानी बनने लगी।

जारासबाई के यहां जब बड़ी बैठकें होतीं तो उनमें वंशों के मुखिया और सरदार "प्यादों में घुड़सवार" भाग लेने आते। जारासबाई उनके सामने जब-तब अपने नये नौकर की प्रशंसा करता, उसके दुख-दर्दों, मुसीबतों और सब का बखान करता। सारसेन और कंरनबाई भी यही राग अलापते हुए नेक काम के लिये हल्केदार की तारीफ़ करते। ख़ुदा करे कि रात के इस उठाईगीरे को नज़र न लग जाये, जिसे जारासबाई ने ईमानदार आदमी बना दिया है, जिसके गुस्से से भरे और कठोर दिल में नेकी और भलाई भर गई है।

"सही रास्ते पर चल रहा है... इन्सान बनता जाता है..."

घोड़ों की तरह मोटे-ताजे और अपने वंशों के घमंडी मुखिया इस भगोड़े चरवाहे को ध्यान से देखते। बाहरवाले लोग उसकी पीठ थपथपाते, उससे बातचीत करते। गहरी समझ-बूझ रखनेवाले यह समझ जाते कि इस जवान पर जारासबाई ख़ास आशाएं लगाए हुए है।

निडल्लेना के मामले याक़्तीगुल परेशान हो जाता था।

आराम का जीवन उसके लिये भारी मुसीबत था। चील को आसमान में ऊंची उड़ान भरे बिना और घोड़े को दौड़े बिना चैन नहीं मिलता। उसने अपना पूरा जोर लगाकर जारासबाई की सेवा करने की कोशिश की। बेशक लगता तो यही था कि घोड़ों को चराने के सिवा यह जीवन में कुछ भी नहीं जानता, फिर भी वह जो भी काम हाथ में लेता, उसे खूब बढ़िया ढंग से पूरा करता। मगर गांव का काम-काज – यह भी कोई काम होता है? इसके लिये भला उसकी ताकत की जरूरत थी? उसे तो औरतें कर सकती हैं।

गर्मी में कुत्ते की इधर-उधर डोलनेवाली जबान की तरह बाग्तीगुल सुबह से शाम तक गांव में दौड़-धूप करता और इधर-उधर दौड़ता रहता। यह किसी चीज की मरम्मत और सफाई करता, कुछ उठाकर लाता, ले जाता, कुछ हिलाता-डुलाता मानो उसे चैन से बैठना सुहाता ही न हो। काम का उसका जोश और घर-गृहस्थी में उसकी गहरी दिलचस्पी देखकर पैनी नजर रखनेवाला कैरलबाई तो बिल्कुल ही मोम हो गया। भेड़ की चर्बी के पिघलने पर जैसे उसके ऊपर चकत्ते आ जाते हैं, वैसे ही अब उसके गालों पर मुस्कान खिली रहती। बहुत ही प्यारा नजारा होता है किसी को अपने लिये पीठ दोहरी करते और पसीना बहाते हुए देखना।

"काम को यह बहुत ही हुनर-फुरत निपटा डालता है। हर फन मौला है। हिसाब-किताब में भी कुछ बुरा नहीं! दे तो जावे उसे कोई धोखा..." कैरलबाई मुखिया से कहता।

"बेचारा मुसीबत का मारा है, असहाय है। उसपर खुदा की नजर सीधी नही है, इसीलिये गरीबी का शिकार है। वरना काम-काज में ऐसा होशियार आदमी गरीब रहे?" कैरनबाई दूसरों से कहता।

घोड़ों और भेडों को चराने से लेकर वसन्त में बुआई और पतझर मे कटाई करने तक का हर काम वास्तीगुल अच्छी तरह से जानता था। नये चरागाह ढूंढने, वक्त पर घास सुखाने या जरूरत पड़ने पर सफेद रोटी पकाने का अथवा ऐसा कोई भी काम वास्तीगुल आसानी से और अन्य किसी भी चरवाहे, रखवाले या रसोइये से जल्दी कर डालता था।

वह नौकर से मददगार और फिर सलाहकार बन गया— सो भी अकेले बाई के घर मे या बाई की बीवी के लिये ही नहीं, सभी अडोसियों-पडोसियों के लिये भी। लोग उसके पास काम-काज और घर-गृहस्थी के मामलों मे सलाह लेने आते। उम्र मे बहुत बड़ा न होते हुए भी वह उनके बीच सुलाह कराता, उन्हे राह दिखाता और समझाता-बुझाता। कुछ समय गुजरने पर वह गांव भर मे दूरदर्शी कहलाने लगा।

हरकेदार धीरे-धीरे उसे अपने दफ्तरी काम-काज मे भी हाथ बंटाने की इजाजत देने लगा। एक काम, फिर दूसरा काम सौंपा... वास्तीगुल फिर से इधर-उधर घोड़ा दौड़ाने लगा, मगर चरवाहे का डंडा लिये हुए नहीं, कंधे पर सन्देशवाहक का थैला डाले हुए। यह थैला विश्वास और

सत्ता का द्योतक था। अब तो वह गुंद अपने को नहीं पहचान पाता था।

बाई के काम-काज में उलझा हुआ वाग्ज़ीगुल अपना ध्यान रखना भी नहीं भूलता था। जब वह स्याही से लिखे और मुहर लगे महत्वपूर्ण कागजात का थैला लेकर सारे हल्के में घूमता-फिरता तो कुछ छोटे-मोटे माल भी अपने साथ ले लेता और उन्हें इच्छुक खरीदारों को बेच कर कुछ मुनाफा कमा लेता। बहुत-से लोग उसके आने और यह जानने के इन्तजार में रहते कि वह क्या लेकर आयेगा। बसन्त में वाग्ज़ीगुल ने पहले की तुलना में अपने लिये तिगुनी-चौगुनी जमीन की बोवाई कर ली। जारासबाई ने जरा भी आपत्ति नहीं की, क्योंकि फैरनबाई ने उसे बीज ले जाने की अनुमति दी थी।

सान्पेन के समान उसे यहां भी कोई वेतन नहीं मिलता था। पर इतना तो था कि जारासबाई उसकी पिटाई नहीं करता था, उसे आराम से जीने देता था। हालशा ने अगले जाड़े के लिये काफी मात्रा में साग, आटा, घी, सफेद नमक और बिल्कुल बाई के घर जैसी गन्धक की पीली दियासलाइयां और पक्के धागे जमा कर लिये। यह गुंद भी बाई के घर में कुछ न कुछ काम करती रहती, बाई की बीवी की सेवा करती और गर्मी भर में ही स्पष्टतः काफी स्वस्थ हो गई और उसकी पोशाक में भी बहुत सुधार हो गया। बाई के घर के जाने-पहचाने उसे

खूब जचते और अपने पुराने कपड़ों से उसने बच्चों की पोशाकें बना दीं। वे अब नंगे या चियड़ों में नहीं घूमते थे।

जाड़े में ही जारासबाई ने वाल्लीगुल से कहा था:

"बेटे को कुछ पढ़ाना-लिखाना चाहते हो? यहां ले आओ उसे।"

यह तो बहुत ही बड़ी मेहरबानी थी।

हल्केदार के गांव में एक जवान कज़ाख़ जुनूस रहता था। उसने रूसी स्कूल की पढ़ाई पूरी की थी और पढ़ा-लिखा होने के कारण ही उसे मुल्ला कहा जाता था। वह खाते-पीते लोगों के घरों के दो-तीन लड़कों को पढ़ाता था, हल्केदार का बेटा जागाज़ी भी उसी से तालीम पाता था। अपने भाग्य को सराहता हुआ वाल्लीगुल अपने बेटे सेइत को मुल्ला के पास ले गया।

"वहां जाकर पढ़े-लिखे तो ढंग का आदमी बन जायेगा," वाल्लीगुल ने बेटे से कहा और सेइत ने इन अद्भुत शब्दों को गांठ बांध लिया।

जाड़े भर सेइत रूसी ककहरे को दोहराता रहा, उसने उसे ऐसे रट लिया मानो वह दुख-मुसीबत से लोगों को उबारने वाला कोई मन्त्र-टोना हो। उसका पढ़ाई में बहुत मन लगता था और वह बहुत जल्द ही बाई के लाडले, बिगड़े हुए और मूढ़ बेटों से आगे निकल गया।

मुल्ला प्यार से सेइत से कहता:

"बड़ा होकर मुल्ला बनेगा।"

सेइत को अक्सर देर तक रातों को नींद न आती। वह कल्पना करता रहता कि कैसे बड़ा होकर मुल्ला बनेगा।

वाइतीगुल के बोये हुए बीज ख़ूब बढ़िया और अच्छे पौधे बनकर फूटे। चरवाहे के मन को चैन मिला। गर्मी में जारासवाई के गाव में ही आ बसा, जो अब उसके लिए अपना गाव बन गया था। सख़्त गर्मी के दिन उसने बेटे के साथ ऊचे पहाड़ी चरागाहों पर बिताये और जी भर कर घोड़ी का फ़ेनिल सुनहरा दूध पिया।

गर्मी मे खेतीबाड़ी का काम-काज कम हो गया। हल्केदार ने अब वाइतीगुल को पूरी तरह अपने कामों मे उलझा लिया। किसी रहस्यपूर्ण दौड़-धूप में दिन पर दिन बीतने लगे। इस दौड-धूप के पीछे जारासवाई के बड़े मामले भांपे जा सकते थे।

वाइतीगुल बहुत जल्द ही अपने काम की विद्या सीख गया: जिन गावों मे हल्केदार की प्रतिष्ठा थी, वहा के लोगों के साथ मलमनसाहत और ढंग से पेश आना और जहां ऐसा नहीं था, वहा तड़ीबाजी और धमकियों से काम लेना, लड़ने-झगड़ने को तैयार रहना। हल्केदार कभी-कभी उसे छोटी-छोटी सभाओं में भाषण देने की भी अनुमति दे देता। ख़ूब बढ़िया तकरीर करता था वाइतीगुल। जब तक मन मे किसी प्रकार का ऊहापोह नहीं आया वह निष्ठा और लगन से काम करता रहा। वह ताड़ गया कि लोग अब उसे उसी नजर से देखते हैं, जिस नजर से कभी वह ख़ुद सास्मेन के कारिन्दों को देखा करता था। चरवाहे की ख़ुशी फ़ौरन हवा हो गई।

सास्मेन ने अभी तक किसी तरह की कोई परेशानी पैदा नहीं की थी। लगभग एक साल गुज़र गया, किन्तु जारासवाई ने भी सास्मेन की कोई चर्चा नहीं की। वाइतीगुल ने यह

समझने की कोशिश की कि हल्केदार के मन में क्या है। वह जितना अधिक इसके बारे में सोचता, उतना ही अधिक उसका मन उदास होता। यह थी धोखे की दुनिया और खामोशी थी सन्देहों से ओतप्रोत।

पतझर में चुनाव होनेवाले थे और साल शुरू होने के साथ चेल्कार, बुर्गेन और अन्य स्थानों पर वंशों के बीच छिपी-छिपी और उलझी-उलझायी खींचातानी शुरू हो गई थी। हर महीने यह अधिकाधिक उग्र और खुला रूप लेती जाती थी।

"यहां किसी तरह की नेकी की उम्मीद नहीं करनी चाहिये," दूरदर्शी वाल्जीगुल ने अपने आपसे कहा। मगर वह किसी तरह भी यह नहीं भांप सकता था कि मुसीबत किस रूप में उसके सामने आयेगी।

झगड़े अधिकाधिक उग्र रूप लेते जाते थे। वे मामूली लोगों के लिये अनबूझ थे, उनकी समझ से परे थे। ये बहुत पहले से ही हल्के की सीमा से कहीं दूर जा चुके थे और उन्होंने लगभग आधे विराट प्रदेश को अपनी लपेट में ले लिया था। शक्तिशाली धनी वंश, बाई और मुखिया इसमें उलझ गये थे, उन्होंने गड़े मुर्दे उखेड़ना और पुराने झगड़ों की आग को हवा देना शुरू कर दिया था।

कमजोर वंश सहारा ढूंढते थे और ताकतवर अपने साथी। चुनाव जैसे-जैसे नजदीक आते गये, वैसे-वैसे हल्कों में दो बड़ी ताकतें साफ तौर पर सामने आ गईं। एक था मुखिया था चेल्कार हल्के का हल्केदार जाकसगाई और दूसरा था—बुर्गेन्स हल्के का मुखिया गाल्मेन का भाई—साट। दोनों ये

अपने-अपने छिपे हुए दलाल और प्रतिद्वन्द्वी के शिविर में भाड़े के टट्टू भी थे।

ऐसा प्रतीत हो सकता था कि नेल्कार में जारासवाई की जो स्थिति थी, उसकी तुलना में साट अपने हल्के में ज्यादा ताकतवर और मजबूत था। साट को अनेक, एकजुट तथा घमंडी कोशोचाक परिवारों का समर्थन प्राप्त था। जारासवाई के पक्ष में केवल दो-तीन धनी और प्रभावशाली वंश थे। मगर स्तेपी में भला ऐसे दो वंश भी हो सकते हैं, जिनमें आपसी दुश्मनी न हो? लेकिन प्रदेश में चालाक जारासवाई के घमंडी साट और सभी अन्य हल्केदारों से कहीं अधिक सम्पर्क-सम्बन्ध थे। इसलिए उन सबकी नुकेल जारासवाई के हाथ में थी।

गर्मी में स्तेपी में भड़क उठनेवाली आग की तरह ये झगड़े अधिकाधिक तेजी पकड़ते गये।

सुनहरे बटनोंवाले रूसी कर्मचारी अर्थात् प्रादेशिक संचालक के दफ्तर में सभी तरह की चालाकी भरी चुगलियों और शिकायतोंवाले कागज पहुंचने लगे, जिनपर ढेरों हस्ताक्षर होने और कलों की मुहरें लगी होतीं।

साट के हिमायती मुखियों ने जारासवाई की मनमानी के बारे में खूब जी भर कर शिकायतें कीं। हर बार उसकी जांच की जाती और उसे अपमानजनक तथा बड़े-बड़े जुर्माने देने पड़ते। मगर जारासवाई हर बार बिल्कुल बचकर निकल जाता। दूसरी ओर साट नगर में जाकर फंस गया। जारासवाई की चुगली के फलस्वरूप साट को पन्द्रह दिन

के लिये प्रादेशिक जेल में बन्द कर दिया गया। सिर्फ़ ख़ुदा ही जानता है कि ऐसा मार्का मारने के लिये जारासबाई ने कितनी तिकड़मबाज़ी की, कितनी रक़म लुटाई। मगर था यह बहुत बड़ा काम।

सभी ओर यही चर्चा होने लगी:

"ख़ुद तो आ गया बिल्कुल दूध धोया... और उसके मुंह पर ख़ूब कालिख पोत दी, अच्छी तरह उसकी जड़ों में पानी दे दिया... पन्द्रह दिन-रातों तक जेल में बन्द करवा दिया! वाह बाई, वाह!"

जारासबाई की इस कामयाबी के बाद उसके हिमायतियों की संख्या बढ़ गई, विरोधी भी ज्यादा हो गये। जहां डर है, वहीं डाह भी।

मुखिया चरागाहों में लगातार घोड़े कुदाते फिरते रहते। वे कहीं ख़ुशामद करते तो कहीं धमकी देते। उस साल गर्मी भी ख़ूब कड़ाके की पड़ी और उन्हें चैन से पानी पीने तक की फ़ुरसत नहीं मिली। चुनाव, चुनाव... तीन सालों के लिये हुकूमत!

जारासबाई ख़ूब ज़ोर-शोर से साट के पक्ष की कमज़ोरियों-ख़ामियों को खोजता रहता। वह अपने गिर्द ऐसे लोगों को जमा करता, जो साट से नाख़ुश थे, जिनका उसने अपमान किया था, जो टावांदोन थे या ऐसे ही आवारा किस्म के थे। वह उनपर ख़ूब पैसा लुटाता, उनकी जेबें गर्म करता और जहां-तहां पशु बांटता फिरता। उसे मालूम था कि साट भी ऐसा ही कर रहा था इसलिए वह अपने लोगों पर कड़ी

नजर रखता; जिनके बारे में सन्देह होता, उन्हें ज्यादा खुश करता और साट से ज्यादा पैसे देता। तीन साल के लिये हुकूमत! खर्च की हुई एक-एक कौड़ी बड़ी आसानी से वापिस आ जायेगी।

वक़्त गुजरता जाता था और यह स्पष्ट नहीं हो पा रहा था कि किसका पलड़ा भारी है। साट को कोज़ीबाक परिवारों पर पूरा यक़ीन था और ये अपनी शेखी बघारते हुए जारासबाई की दौड़-धूप का, उसके अन्तहीन खर्च का मज़ाक उड़ाते।

"शहर में यह चील है, मगर हल्के में चिड़िया। हम बेलारियों का घमंड चूर-चूर कर देंगे..." कोज़ीबाक कहते, और बाल्ज़ोगुल अनुभव करता था कि मामला आख़िर क्या रंग लेगा।

हाँ, तो जब जारासबाई के घोड़ों के झुण्ड पहाड़ी चरागाहों में जा पहुँचे तो हड़बड़ी में जारासबाई की बछेरोंवाली तीन घोड़ियाँ और मोटा-ताज़ा बछेरा ग़ायब हो गये। उनकी तलाश की गई तो चोरों का सुराग़ मिल गया। युर्त में जारासबाई के भाड़े के वफ़ादार टट्टू ने ख़बर दी कि साट के आदेशानुसार सात्मेन के लोग घोड़ों को ले भागे हैं। घोड़ा बछेरोंवाले चोरों के पीछे-पीछे ही वहाँ जा पहुँचे। जारासबाई के जवानों ने घोड़े लौटाने की माँग की, मगर सात्मेन ने बड़ी ढिठाई से उन्हें गन्दी-गन्दी गालियाँ दीं और . भगाते हुए गाँव से निकलवा दिया।

जारासबाई को रात भर नींद नहीं आई—ग़ुस्से से दम घुटता रहा। पौ फटते ही उसने [illegible] ..

और सारसेन को आदेश दिया कि वह शिकायत लिखकर कागज़ नगर में भिजवा दे। वास्तीगुल को आशा थी कि हल्क़ेदार काग़ज़ देकर उसे ही भेजेगा, मगर बाई ने ऐसा नहीं किया। वास्तीगुल ने हैरान और नाराज़ होकर घोड़े का ज़ीन खोल दिया। सारी सुबह बाई के बड़े-से ख़ेमे के पास लोगों की भीड़ लगी रही, उसमें से लोगों की बातचीत की ऊंची आवाज़ें आती रहीं। बुज़ुर्ग यहां वाद-विवाद करते थे, बुरा-भला कहते थे और धमकियां देते थे।

दोपहर होने पर जब सफ़ेद दाढ़ियोंवाले सभी बुज़ुर्ग चले गये और ख़ेमों की छाया में गर्मी से बचते, ठंडे और ताज़ादम करनेवाले दही की, जिसे कुमीस कहते हैं, चुस्कियां लेने लगे, केवल तभी जारासबाई ने वास्तीगुल को अपने पास बुलाया। वास्तीगुल ने जैसे ही बाई का तमतमाया हुआ और ऐसा चेहरा देखा जिसपर एक रंग आता और एक रंग जाता था, वैसे ही उसका माथा ठनका। नाक-भौंह सिकोड़े, चाबुक हिलाता हुआ और बाइयों में से सबसे हट्टा-कट्टा, धीर-गम्भीर और काना कोशिश मालिक के दाईं ओर खड़ा था।

जारासबाई ने वास्तीगुल को अपने पास बिठाया, उसे कुमीस डालकर दिया और स्वयं बढ़िया प्याले से चुस्कियां लेते हुए उसने यहां से बातचीत शुरू की कि जैसा कि सभी जानते हैं और सभी ने अपनी आंखों से देखा है, खुदा की मेहरबानी से वास्तीगुल का पिछला पूरा साल कुछ बुरा नहीं गुज़रा है। बाई ने उसे किसी तरह के ऊल-जलूल कामों में नहीं फंसाया और उसकी नसिर को मर्दों में नामवर काम की

ख़ातिर बचाये रखा। अब बाख़्तीगुल समझ गया कि उसके अजीब ढंग के शान्त और आसान जीवन का अन्त हो गया।

"जब तक डडा हाथ मे नही लेगे, तब तक कमीने गीदड़ दुम दबाकर नही भागेंगे," जारागबाई ने कहा।

कोकिज ने थूका और बूट पर चाबुक मारा। बाख़्तीगुल का हाथ काप गया और कुमीस नीचे गिर गया।

चरवाहा समझ गया कि अब सब से अधिक भयानक बात होने जा रही है—पुरानी बदकिस्मती फिर से सिर उठाने जा रही है।

"चुपचाप बैठे रहेगे तो बाजी हार जायेंगे," हक़ीदार कहता गया। "बैठे बैठे मुह ताकते रहेगे तो ये हमारी गर्दनो में तोक और जानवरों के गलो मे फंदा डाल देगे। हमारे लोगो को मार डालेगे और घोड़ो को हांक ले जायेंगे। अपने ही लोग कौड़ियो के बदले हमारा भंडाफोड कर डालेगे... लगता है, बाख़्तीगुल, कि वह घड़ी आ गई, जिसका हम-तुम साल भर इन्तज़ार करते रहे है।"

बाख़्तीगुल चुप रहा।

"आज ही तुम अपनी पसन्द और भरोसे के कोई दसेक जवान चुन लो और चल, खुदा का नाम लेकर चल दो! गालमेन या गाट के झुण्ड पांवों की उम्मत नहीं, किसी भी बोल्शेविक परिवार पर टूट पड़ो। दरिया नमन के ... का झुण्ड भगा लाओ। तुम तो तुम जानते ही हो... ... लिए यह कोई नई बात तो है नहीं..."

वाप्तीगुल चुप्पी साधे रहा। उसने खतम न किये हुए कुमीस वाला प्याला एक तरफ रखा और अपने कुरते से हाथ पोंछे। उसे अपने गले में फांस-सी अनुभव हुई।

"वह घडी आ गई, जिसका इन्तजार था..." यह सब क्या है? क्या बहुत दिन गुजर चुके हैं कि जब जारासबाई एक पालतू जानवर की तरह मुझे अन्य बाइयों और मुखियों को दिखाया करता था? बाई की प्रशंसा करते हुए वे अभागे की पीठ थपथपाते थे और कहते थे कि आदमी को सही रास्ते पर चलना चाहिये। कब की बात है यह? कल की ही तो। और आज—"खुदा का नाम लेकर चल दो"? लोग क्या कहेंगे? सेइत को यह क्या कहेगा?

कोकिश वाप्तीगुल के सामने उकडूं बैठ गया और अपनी सांड जैसी गर्दन फुला कर हंसता हुआ बोला:

"अरे, यह तुम्हें हुआ क्या है? बाई की रोटियां खा-खाकर क्या श्रीमन बन गये हो? खाना देनेवाले को तो ऐसा काम सुझा दे। वह तो सब से उठ आयेगा इसके लिये!"

मगर वाप्तीगुल यह सुनकर मुस्कराया नहीं। जारासबाई ने वाप्तीगुल के लिए और कुमीस डालते हुए कहा

"जैसा कि तुम और बाकी सभी लोग जानते हैं, यह साठ ने ही की है। न वह ऐसी हरकत करता और न हमारे लिए ऐसा कदम उठाने की नौबत आती। उन्होंने सब की आंखें बचाकर अपने हाथ काले किये हैं और हम ईमानदारी से धाया बांध कर हिसाब बराबर कर रहे हैं! और अब

वे चोरटे चाहे यहाँ भी क्यों न जायें, बेशक लाट साहब के पास भी, सभी लोग – क्या कज़ाख क्या रूसी – हमारा ही पक्ष लेंगे. . समझ गये न?"

"नहीं भाई . नहीं समझा। सब कुछ उलझा-उलझाया हुआ है मेरे दिमाग में," दर्दभरी और दबी घुटी आवाज़ में यासीगुल ने जवाब दिया। "एक बात जानता हूं कि पतझर भाई कि भाई और इस पतझर में चोर और धावामार दोनों को ही सूली दे दी जायेगी .. बहुत दुख-मुसीबतें देखी-जाती हैं मैंने! इतनी अधिक कि अब और सहने की हिम्मत नहीं रही। मैं तुम्हारी मिन्नत करता हूं कि मुझे वहां भेजो!"

जागगबाई ने लाल-पीला होते और उसकी बात काटते हुए कहा.

"सच में तुम सूली की चिन्ता करने लगे हो? लानत है तुम पर बुज़दिल! .. अपना कर्तव्य भूल गये? तुम्हें अपने पूर्वजों की सच्ची आत्माओं का भी ध्यान नहीं रहा? लाट ने तुम्हारे बाप को तबाह किया। मालकिन ने तुम्हें यतीम बनाया। मैं तुम्हें लाट और मालकिन से बदला लेने की ताकत दे रहा हूं। अगर ऐसा मौका हाथ से निकल जाने दोगे, तो मैं तुम्हें बुज़दिल और गद्दार समझूंगा, यह मानूंगा कि तुम्हारी बातों में दम-खम नहीं, तुम कोरे दिखावे और चालाक हो, जिसे मैंने बेकार ही अपने टुकड़ों पर पाला!"

"तुम मुझे क्या सिखा रहे हो, मालिक?" यासी-गुल ने कहा। "बैठे के सामने क्या सिखाना बेत का"

जागगबाई दबे-दबे हंसा।

"मैं ही हर चीज के लिए जवाबदेह हूं! धरती के मालिक और आसमान के मालिक के सामने भी! मैं ही पेट पालता हूं, मैं ही हुक्म देता हूं। मेरा हुक्म – मेरा ही गुनाह! खुदा पर भरोसा करो और जाओ..."

"बस, काफी बातें हो चुकी," कोकिश ने कहा। "बाई, तुम यकीन करो कि वह जायेगा।"

जारासबाई धीरे-धीरे अपनी जगह से उठा।

बाल्तीगुल ने झपटकर बाई से पहले उठना चाहा, मगर उसके घुटने जमे-से रह गये, वह हतप्रभ और बुत बना-सा घुटनों के बल ही बैठा रह गया।

६

उसी दिन बाल्तीगुल की रहनुमाई में दर्जन जवानों ने जारासबाई, सारसेन और कोकिश के घोड़ों के झुण्डों में से लम्बी-लम्बी दुमों और तेज दौड़नेवाले सब से अच्छे घोड़े छांट लिये। तैयारी को छिपाया नहीं गया, क्योंकि वे न्यायपूर्ण धावा बोलने जा रहे थे। सन्ध्या को जवानों को विदा करने के लिए गांव के सभी छोटे-बड़े लोग जमा हुए।

जवान सर्केशी ढंग के साधारण चोगे पहने थे। मगर घोड़सवार घोड़े ही मर्द की खूबसूरती होती है। वह होती है उसकी शान, उसके खूबसूरत घोड़े थे। खूब सजे जवान [illegible] हो गये। उनके गठे हुए कंधों पर चोगे बिल्कुल फबे हुए थे। देखने से ऐसा लगता था कि पूरा लश्कर पत्थर को चूर-चूर कर डालेंगे, साथ ही वे सवारियों की तरह

बड़े चुस्त, बहुत फुर्तीले थे। धावामार मचाते और भोंडे मज़ाक करते थे मानो कोई दिलचस्प, आह्लादपूर्ण खेल खेल रहे हों, गाँववालों के सामने अपनी और घोड़ों की नुमाइश कर रहे थे। घोड़े ऐसे थे कि उन पर से नज़र ही न हटे! बंधी हुई पूंछोंवाले घोड़े, जिन पर नीचे और चपटे ज़ीन कसे थे, अपने सुडौल सिरों को घमंड से अकड़ाये हुए बेचैनी से पैर बदल रहे थे। ये घुड़दौड़ों में जीतनेवाले तेज़ घोड़े थे। शाम की हल्की-हल्की रोशनी में साफ़-सुथरे और मोटे-ताज़े घोड़े मखमल की तरह चमक रहे थे। घोड़े एक जगह पर खड़े न रहकर घुड़सवारों के नीचे उछल-कूद कर रहे थे और गाँव में ढोल की डमडमाहट के समान टापों की हल्की और दबी-दबी आवाज़ गूंज रही थी।

काल्मीगुन का इन्तज़ार हो रहा था। वह बड़े चैन से हल्केदार की शुभकामनायें लेकर निकला, मानो बदला-बदला-सा। वह भी मामूली-से कपड़े पहने था। और यह चीज़ सभी को बहुत जँची। मगर उसके रंग-ढंग और चाल-ढाल में कुछ नई बात थी, पहले अनदेखी-अनजानी। चोगा केवल आधे बदन को ढके था और वह दायीं आस्तीन को पेटी में खोंसे था ताकि अपने हाथ को आज़ादी से हिला-डुला सके। वह पेटी में छः गोलियोंवाली पिस्तौल भी खोंसे हुए था। काल्मीगुन किसी पर गोली तो नहीं चलायेगा, मगर इस पिस्तौल से ज़ाहिर हो जाता था कि मुखिया कौन है, कौन सब से पहले चोट करेगा और कौन अपने बराबर सब में सबसे बाद होगा।

वास्तीगुल धीरे-धीरे और बड़े रोब से अपने साथियों की ओर बढ़ चला। उनकी नजरें उस पर टिकी हुई थी। ऐसा आदमी साथ में हो तो क्या खतरा हो सकता है। वह अन्य सभी की तुलना में अधिक मजबूत और हृष्ट-पुष्ट था। उसकी बायीं बाहु में, कलाई से कंधे तक की उसकी उभरी-उभरी मांस-पेशियों में भारी लोच थी, ताकत का सागर हिलोरें ले रहा था।

वास्तीगुल का चेहरा भी मानो दूसरा ही था। उसकी सिकुड़ी-सिमटी आंखों में अदम्य और विह्वल जोश झलक रहा था। केवल घुमती हुई मूछों के नीचे ही अप्रत्याशित-सी हल्की-हल्की, स्वप्नद्रष्टा की सी मुस्कान।

"ऐ जवानो।" वास्तीगुल ने अधिकारपूर्ण ढंग से एक बारगी पुकार कर कहा। "तुम्हारा सफर कामयाब रहे।" घोड़ों की टापों की आवाज और सामोनों से उसका स्वर गूंज उठा।

"सभी को कामयाबी मिले, सभी को!" जवानों ने एकसाथ जवाब दिया।

"ऐसा ही होगा, ऐसा ही होगा!" विदा करनेवालों ने सुर में सुर मिलाया।

वास्तीगुल के घोड़े के करीब पहुंचने से पहले ही एक भूरा चमकीला ऊंचे रंग का बड़ा और मजबूत घोड़ा लेकर उसके पास पहुंच गया। अन्य होते हुए भूरे को सात साल किसी से यह घोड़ा एक बड़े इनाम की नजरों में समान प्रतीत हो रहा था। यह हुलिदार था सब से अधिक शानदार घोड़ा

था। आरागवाई दौड़ों के समय, स्तेपियों में अनेक कोसों की लम्बी मंज़िल तय करने के लिए इस से काम लेता था।

चरवाहे ने इज्जत के साथ सहारा देकर सरदार को घोड़े पर चढ़ाना चाहा, मगर वाग्लीगुल ने लगाम के सिरे को पेटी में खोंसा और रकाबों को लगभग छुए बिना ही उछलकर ज़ीन पर जा बैठा। घोड़े की पीठ कुछ दब गई और वह एक ओर को कोई चारेक कदम पीछे हट गया।

"हां, तो चलो," एड़ लगाते हुए वाग्लीगुल ने आदेश दिया।

घुड़सवार एक दूसरे से सटते हुए वाग्लीगुल के पीछे-पीछे अपने घोड़े दौड़ाने लगे। घोड़े दौड़ाते हुए ही वे ज़ीन के साथ अपने भाले और सोंटे ठीक करने लगे। उनमें से कुछेक तो बगल में ऐसे लापरवाही से सोंटा दबाये हुए थे मानो लड़ने-भिड़ने नहीं, सैर-सपाटे को जा रहे हों।

गांव के मर्द, औरतें और बच्चे शोर मचाते, हो-हल्ला करते और बढ़ावा देते हुए इनके पीछे-पीछे भागे। स्तेपी में सारा यौवन, जवांमर्दी और बल बढ़ा जा रहा था। जब यह जवांमर्दी अपना रंग दिखायेगी तो शैतान को भी मुश्किल होगी, मगर हारेगी...

शाम के झुटपुटे में हल्के रंग के घोड़ों की आकृतियों की सहसा झिलमिली रही, फिर वे एक काले धब्बे में बदलीं और फिर दूरी पर गायब हो गईं। मगर घोड़ों के शोर के समान टापों की धप धीमी हुई आवाज़ देर तक सुनाई देती रही।

इस तरह यह धावा आरम्भ हुआ जिसे कोर-मानें सरदार तीन ख़ानदानों कहते थे। इस से बाद के

घमंड की तुष्टि होगी और ग़रीबों की आजादी की सदियों पुरानी लालसा तृप्त होगी। ग़रीब पिटेंगे और बाइयों को मिलेंगे मुफ़्त घोड़े। हरेक को वही मिलेगा, जो बाइयों के बाई, सबसे बड़े क़ाज़ी यानी ख़ुदा ने उसकी क़िस्मत में लिख दिया है।

पौ फटने तक वास्तीगुल और उसके जाबाज़ों ने अपना काम पूरा कर लिया। उन्होंने साठ की दसेक जवान घोड़ियां और बड़े अयालोंवाला एक बढ़िया घोड़ा चुरा लिया। वे पीछा करनेवालों से बड़ी आसानी से बच निकले, यद्यपि उन्हें अपने पीछे गोलियां दगने की आवाज़ें भी सुनाई दीं। वे तीन हल्क़ों की सीमा पर वीरान और ख़ामोश पहाड़ों में सही-सलामत आ छिपे।

रास्ते में, किसी अनजाने गांव में से उन्होंने एक साल का मेमना भी उठा लिया। बस, कुत्ते ही उनके पीछे भौंकते रह गये। पत्थरों पर बेफ़िक्री से आग जलाई गई। वास्तीगुल ने मांस उबालने का आदेश दिया और ख़ुद नंगी और भुरभुरी चट्टान पर चढ़ गया।

उसके सामने ईंट के रंग की रक्त-रंजित-सी पैनी शिखरों-वाली चट्टान दिखाई दे रही थी। उसके पीछे सूअर के बालों की तरह घोर घना जंगल दिखाई दे रहा था। चीड़ के बड़े-बड़े और घने वृक्ष ऐसे काले-काले दिख रहे थे मानो झुलसे हुए हों। इसके ऊपर कुछ नीली-नीली और भगवनी हुई तथा धुमली बादल छाई थी। इसके और ऊपर मानो सूर्य द्वारा गगन से छीन ली गई बर्फ़ की गोल-मोल चोटी चमक रही

थी। यह बहुत ही बढ़िया सफेद ग़ेमा इन्सान की पहुंच के बाहर था। असीम आकाश में उड़ता हुआ उकाब गौरैया-सा प्रतीत हो रहा था।

बाज़्नीगुल ने ऊपर की ओर नज़र दौड़ाई—लाल चट्टानें, काले जंगल, बर्फ के सफेद ग़ेमे और आकाश में उड़ते हुए उकाब की ओर देखा। उसका दम घुटने-सा लगा। वह देख रहा था और मन ही मन सोच रहा था· "जहां से भागा, वहां ही आया, बस, यह ही मैंने पाया!"

नीचे, अलाव से हल्का-हल्का लहरियेदार धुआं उठ रहा था, मांस की गंध आ रही थी, जवान लोग औरतों की तरह बतिया रहे थे और छोकरों की तरह शरारतें कर रहे थे। उनके पैरों के नीचे कंकड़, भुरभुरे और अविश्वसनीय रोड़े आवाज़ पैदा कर रहे थे। अपनी सख़्त मूछों को चबाते हुए बाज़्नीगुल ने आंखें सिकोड़ीं।

रास्ते के धावे का जोश ठंडा पड़ गया था मानो नशा उतर गया हो। दिल में कड़वाहट-सी बाक़ी रह गई थी।

"आह. . मेरे लिए सब सब बराबर है..!" बाज़्नीगुल ने ऊंची आवाज़ में कहा।

"मेरी नेकनामी हो या बदनामी—मेरे लिए सब सब बराबर है। मेरी किस्मत आरागवाई के हाथों में है। यह बाई का काम है कि किसी को सज़ा दे और किसी पर मेहरबानी करे। इतना भी ग़ुस्सा का गुन है कि वह बाई साल्मेन जैसा नहीं है। आरागवाई नहीं भूलेगा कि मैंने सच्चाई से और मन लगाकर उसकी सेवा की है।"

"हमारे लिए तो यह भी बड़ी बात है, बेटे," वाड़ीगुल फुसफुसाया। "ऐसा ही सोचेंगे हम तो..." और भुरभुरे रोड़ों पर कदम रखता हुआ वह अलाव की ओर चला गया।

इस तरह से शुरू हुआ यह जवाबी धावा .. उस सफल और निर्णायक रात के साथ वंशों और वंश-दलों के बीच ऐसा लड़ाई-झगड़ा शुरू हुआ, जैसा कि पहले कभी नहीं हुआ था। रात के घुप अंधेरे और दिन के उजाले में, स्तेपियों और पहाड़ों में जोरदार मार-पीट होने लगी, पीछा करनेवालों की भयानक चीख-पुकार सुनाई देने लगी, खून बहने लगा और जलन पैदा करनेवाली काली धूल उड़ते आकाश को छूने लगी। लड़ाई-झगड़ों और धावों के बाद पुराने समय की भांति सभी चरागाहों और गांवों में चुकी-छिपी चोरी भी फैल गई। कुछ ही समय बाद तो खुद खुदा भी यह नहीं कह सकता था कि कहां धावा बोला गया है, कहां चोरी की गई है, कहां दिन के वक्त सीना जोरी हुई है और कहां आधी रात को चोरों ने अपनी करनी की है।

ठीक ही कहते हैं कि स्तेपी के ये चुनाव जाड़े के बर्फीले अंधड़ के समान थे। कोई भी यह नहीं कह सकता कि स्तेपी में जाड़े की यह मुसीबत कब टूट पड़ेगी। और चुनाव होते थे हर तीन साल बाद! जाहिर था कि जागसवाई ने या तो मार्का मारने या फिर पूरी तरह अपने को चौपट कर देने का फ़ैसला कर लिया था।

पहले की भांति रोज़-रोज़ उसके घर में लोगों की भीड़ लगी रहती, वे शोर मचाते और सलाह-मशविरा करते, मेहमान ही मेहमान जमा रहते... बेहिसाब जानवर काटे और मेहमानों को खिलाये जाते, बहुत से फंदों में फांसकर भेंट कर दिये जाते। पानी की तरह पैसा बहाया जाता था। जागसबाई के पास धन-दौलत में जो रकम थी, उसकी एक-तिहाई उसने एक-दो महीने में ही खर्च कर डाली थी। अब वह वाल्टीगुन और उसके जवानों को चैन से नहीं बैठने देता था। सात्मेन भी कभी ऐसा ही करता था। मगर सरकार जागसबाई कम से कम इतना तो कहता था कि खर्च पूरा करने के लिए नहीं, बल्कि बदला लेने की खातिर उन्हें चोरी-चकारी को भेजता है। सचमुच वह सुन्दर ढंग से अपनी बात कहता था।

इसमें भी आश्चर्य की कोई बात नहीं है कि सरकार जागसबाई ने एक बड़ी सफलता प्राप्त की – एक जोरदार सहारा प्राप्त कर लिया, साट के लोगों में से एक नामवर साथी अपनी ओर फोड़ लिया। जागसबाई ने अप्रत्याशित ही कुरगन्का इलाके के दोसाई कुल के सालवालों से दोस्ती कर ली। यह कोने-कोने लोगों का साथ था। उन्हें इतना कंडीवाला बूढ़ा आपको नहीं भूला दे। इन दोनों के लिए जागसबाई को साल और बहुत बड़ा खर्च करना पड़ा।

लोगों की राजनीति से घुटे हुए करामन्द शाबी ऐसा कहा करते हैं – "सबसे दोरे कहीं पानी की और सबसे दोस्ती में बड़ी गहरी दुश्मनी की।" हां, हां, बयान गहरी

"हमारे लिए तो यह भी बड़ी बात है, बेटे," बाएतोगुल फुसफुसाया। "ऐसा ही सोचेंगे हम तो..." और भुरभुरे रोड़ों पर कदम रखता हुआ वह अलाव की ओर चला गया।

इस तरह से शुरू हुआ यह जवाबी धावा... उस सफल और निर्णायक रात के साथ वंशो और वंश-दलो के बीच ऐसा लडाई-झगड़ा शुरू हुआ, जैसा कि पहले कभी नही हुआ था। रात के घुप अंधेरे और दिन के उजाले मे, स्तेपियो और पहाडो मे जोरदार मार-पीट होने लगी, पीछा करनेवालों की भयानक चीख-पुकार सुनाई देने लगी, खून बहने लगा और जलन पैदा करनेवाली काली धूल दहकते आकाश को छूने लगी। लड़ाई-झगडो और धावों के बाद पुराने समय की भाति सभी चरागाहो और गावों में लुकी-छिपी चोरी भी फैल गई। कुछ ही समय बाद तो खुद खुदा भी यह नही कह सकता था कि कहा धावा बोला गया है, कहा चोरी की गई है, कहां दिन के वक्त सीना जोरी हुई है और कहा आधी रात को चोरों ने अपनी करनी की है।

ठीक ही कहते हैं कि स्तेपी के ये चुनाव जाडे के बर्फीले अंधड के समान थे। कोई भी यह नही कह सकता कि स्तेपी मे जाडे की यह मुसीबत कब टूट पडेगी। और चुनाव होते थे हर तीन साल बाद! जाहिर था कि जारासबाई ने या तो मार्का मारने या फिर पूरी तरह अपने को चौपट कर देने का फ़ैसला कर लिया था।

पहले की भांति रोज-रोज उसके घर मे लोगों की भीड़ लगी रहती, वे शोर मचाते और सलाह-मशविरा करते, मेहमान ही मेहमान जमा रहते... बेहिसाब जानवर काटे और मेहमानों को खिलाये जाते, बहुत से फंदो में फासकर भेंट कर दिये जाते। पानी की तरह पैसा बहाया जाता था। जारासबाई के पास बसन्त मे जो रकम थी, उसकी एक-तिहाई उसने एक-दो महीने में ही खर्च कर डाली थी। अब वह बाख्तीगुल और उसके जवानों को चैन से नही बैठने देता था। साल्मेन भी कभी ऐसा ही करता था। मगर मक्कार जारासबाई कम से कम इतना तो कहता था कि खर्च पूरा करने के लिए नही, बल्कि बदला लेने की खातिर उन्हे चोरी-चकारी को भेजता है। सचमुच वह सुन्दर ढंग से अपनी बात कहता था।

इसमे भी आश्चर्य की कोई बात नही है कि मक्कार जारासबाई ने एक बडी सफलता प्राप्त की — एक जोरदार सहारा प्राप्त कर लिया, साट के लोगों मे से एक ताकतवर साथी अपनी ओर फोड लिया। जारासबाई ने अप्रत्याशित ही बुर्गेन्स्क हल्के के दोसाई वंश के गांववालों से दोस्ती कर ली। यह खाते-पीते लोगो का गाव था। उन्हें कृतघ्न कोजीबाक फूटी आखों नही सुहाते थे। इस दोस्ती के लिए जारासबाई को खास और बहुत बड़ा खर्च करना पड़ा।

स्तेपी की राजनीति में घुटे हुए अक्लमन्द काजी ऐसा कहा करते हैं — "सरकंडे रोकें बहते पानी को और लड़की दोस्ती मे बदले गहरी दुश्मनी को।" हां, हां, जवान लड़की

ऐसा कर सकती है... दोसाई कुल के मुखिया की एक जवान और सुन्दर बेटी थी—कालिश। जारासबाई ने उसके पास एक बिचौलिया व्याह तय करने के लिए भेजा।

वाख़्तीगुल फ़ौरन भांप गया कि इसमें जारासबाई की क्या चाल छिपी है। यह भी मुमकिन है कि जारासबाई लड़की की ख़ूबसूरती पर लट्टू हो गया हो और अपनी प्यारी बीबी को एक जवान सहायिका लाकर देना चाहता हो। मगर महत्त्वपूर्ण बात तो यह नहीं थी। असली बात तो यह थी कि जारासबाई ने पचास ऊंट ख़ुद चुनकर लड़की के बाप के पास भेज दिये। यह बहुत बड़ी भेंट थी मानो वह खान की बेटी हो! इसके पहले भी लड़की के मां-बाप को बहुत-से तोहफ़े भेजे जा चुके थे।

सच है कि शादी का सम्बन्ध बढ़िया सम्बन्ध होता है। बड़ा मूल्य और उपहार देकर क़ायम किया गया रिश्ता कोरी क़समों से कहीं अधिक मज़बूत होता है। इस तरह दूल्हे और मंगेतर के गांव पेट की अन्तड़ियों की भांति आपस में सदा के लिए घुल-मिल गये। साट तो केवल दांत पीसकर रह गया। दोसाई वंश का गांव उसके रास्ते में बबूल का जंगल-सा बनकर रह गया, जिसे न तो पार किया जा सकता है और जिससे दामन बचाकर निकल जाना भी मुमकिन नहीं होता।

स्तेपी अपमानित नारी की भांति कराहती थी। धावा बोलनेवाले अपने जोश में कभी यहां तो कभी वहां टूट पड़ते

और निर्दोष लोग सभी तरह की मुसीबतों-यातनाओं के शिकार होते। ऐसे लोग, जिन्हे न तो साट से कोई मतलब था, न जारासबाई से कोई सरोकार। वे जार-जार आंसू बहाते, ढेरो ढेर गालियां देते और कोसते। जाड़े की भुखमरी ने मानो उनके जानवरों का सफाया कर डाला था!

जारासबाई ने बहुत बड़े पैमाने पर यह सारा काम संगठित किया। चुराये हुए जानवरों को वह अपने और पड़ोस के हल्के मे इधर-उधर कर देता, बिल्कुल व्यापारी की तरह। वाख़्तीगुल चुराकर लाता, कैरनबाई उनके दाम उठाता... एक लाता, दूसरा उन्हे चलता कर देता – बिना मोल-भाव के, *आधी क़ीमत पर ही। यही* कोशिश होती कि जल्दी से जल्दी और बिना कठिनाई के चुराये माल से पिंड छुड़ा लिया जाये। कंजूस साल्मेन कभी ऐसा नही कर पाया था। घोड़ों को तो जैसे जमीन निगल जाती थी – वे रात को आते और सुबह ग़ायब हो जाते और इस तरह जारासबाई की जेब भारी की भारी बनी रहती।

वाख़्तीगुल ने इस सारे क़िस्से की ओर से आंख मूद ली। वह तो मानो तेज बुख़ार की बेहोशी में, स्तेपी की उस आधी में रह रहा था, जब दिन के उजाले में भी कुछ भी दिखाई नही देता। धावे बोलकर वे जो जानवर भगा लाते थे, वे कहां जाते थे, उसे कुछ पता नही होता था। जारासबाई ने इस बात की चिन्ता की कि इस सम्बन्ध में धावामारों का सरदार वाख़्तीगुल पूरी तरह से निश्चिंत रहे। उसने सारसेन,

कैरनबाई और कोकिश को इस बात की बहुत कड़ी हिदायत की :

"जब तुम जागो, तो वह सोया रहे! .. अगर वह कहीं मुसीबत में पड़ जाये और उसे भारी यातनायें दी जायें तो भी हमारा दूरदर्शी यह न बता पाये कि घोड़ों का क्या हुआ, हमने उन्हें कहां गायब किया।"

आख़िर चुनाव हुए। जारासबाई जीत गया – वह चेल्कार का हाकिम बना रह गया। साट पिट गया – उसे नहीं चुना गया। यह सच है कि दोसाई के गांववाले बुर्गेन में अपने उम्मीदवार को सफल नहीं बना पाये थे, फिर भी कोजीबाक को तो मात दे दी गई थी। जारासबाई ने अंधाधुंध जो रक़म उड़ाई, वह ख़ूब काम आई। अब उसका मौका आया था हाथ रंगने का, अपने हल्के और प्रदेश में भी सत्ता की लम्बे बालोंवाली सुनहरी भेड मूडने का। वह तीन साल के लिये हल्क़ेदार और ज़िलेदार हो गया था।

जारासबाई ने बाएतीगुल को अपने पास बुलवाया, उसकी बधाई स्वीकार की, बडी कृपा दिखाते हुए उसकी पीठ थपथपाई और उसे घर भेज दिया।

"घर जाओ और ख़ूब लम्बी तानकर सोओ। अपनी बीवी और बेटे को ख़ुश करो! अगर चाहो तो पूरे तीन साल तक मौज मना सकते हो, अगले चुनावों तक..."

बाएतीगुल ने खुलकर राहत की सांस ली। वह चाहता था कि जल्दी से जल्दी मालिक की नजर से परे चला जाये और मालिक भी यही चाहता था कि वह कहीं दूर हो जाये।

"तुम्हारी इच्छा ही मेरी इच्छा है, मेरे प्यारे मालिक," चरवाहे ने अदव से कहा।

"अच्छा अब तुम जाओ। आगे देखा जायेगा," सफल हो चुके हल्केदार ने उपेक्षा से कहा।

७

वरखा-कीचड़वाली पतझर आई। वाम्तीगुल ने अपने वेटे को घोडे पर विठाया और जाड़े के झोपड़े की ओर चल दिया। वह कभी-कभार मालिक के गाव में आता, उसे सलामी देने, आदर प्रकट करने। एक-दो दिन वहा विताकर हल्के मन से अपने घर, सुखद पारिवारिक वातावरण में वापिस चला जाता। इन दिनो वह गाव मे अजनवी-सा लगता—काम-काज से, दफ़्तर से उमका न कोई वास्ता होता, न वह इस मे कोई दिलचस्पी लेता। वह तो अपने में ही मस्त रहता, लोगो की वातचीत मे कोई रुचि न प्रकट करता, अफवाहों पर कान न देता। इसलिये उसे कुछ भी मालूम नही था कि उसके इर्दगिर्द की दुनिया मे यानी मालिक के गुट्ट मे क्या हो रहा है। वस एक वात उसे हमेशा याद रहती थी कि कोजीवाक उनके साझे दुश्मन हैं... यह वह कभी नही भूलता था और वाक़ी किसी चीज़ की उसे परवाह नही थी।

और जव अचानक एक दिन पसीने के फ़ेन से तर घोड़े पर एक जवान आया और उसने ज़ीन से ही चिल्लाकर कहा—

"तुम्हें जारासवाई ने याद किया है..." तो वाह्तीगुल कुछ विशेष घबराया नही और घोड़े पर सवार हो हरकारे के साथ रवाना हो गया।

गाव मे हल्के के सभी मुखिया जमा थे और... कुछ पराये लोग भी। अपने घोड़ों की पिछाड़ी बांध उन्हें चरने के लिये छोडकर वे सभी हल्केदार के गिर्द घेरा डालकर बैठ गये थे। वाह्तीगुल ने दूसरों से कुछ हटकर ओराज वंश के लोगो को भी बैठे देखा। यह गाव वुर्गेन्स्क हल्के के पड़ोस मे था।

बुर्गेन मे ओराज़ का कुल, जारासवाई के सम्बन्धियों– दोसाई के कुल से कमज़ोर था। कोज़ीवाकों की तुलना में तो वह और भी अधिक कमजोर था। मगर जब तक ताकतवर एक-दूसरे का गला घोंटते रहे, उसी बीच ओराज़ कुल ने हल्के में अपने उम्मीदवार को सफल करा लिया। इस तरह चुनावों के बाद हारा हुआ साट बुर्गेन्स्क हल्के के नये हल्केदार को अपने इशारों पर नचाने लगा। यह तो स्पष्ट ही है कि कमज़ोर कुल का हल्केदार ख़ुद अपने पर ही भरोसा नही कर सकता था और इसलिये वह कोज़ीवाकों के हाथों मे खेलने लगा।

ओराज़ कुल के लोगों को देखकर वाह्तीगुल ने सोचा– "लगता है कि इनकी शिकायत पर मुझे यहा बुलाया गया है।" और उसका अनुमान ठीक ही था। धावा बोलते समय उसके जवान इनके भी कुछ जानवर भगा लाये थे, क्योंकि वे भी वुर्गेन्स्क हल्के के निवासी थे... मगर एक अन्य बात समझने मे वाह्तीगुल से अवश्य गलती हुई। जारासवाई ने उसे सीधा

मुह नही दिया। उसके सलाम का भी मानो अनचाहे, मन मारकर जवाव दिया। सलाम-दुआ के वाद ढंग से हालचाल भी नही पूछा, जैसा कि होना चाहिये था और उसपर ऐसे वरस पडा मानो किसी अजनबी से वात कर रहा हो।

"ए, वाख्तीगुल. . तुम अपनी हद नही जानते! सीमा से वहुत आगे वढ गये हो। मैंने तुम पर विश्वास किया और दूसरो को भी यकीन दिलाता रहा कि तुम गन्दगी मे कभी हाथ नही डालते हो! इधर मैं तो तुम्हारे लिये सब कुछ करता रहा और उधर तुम मेरे ही मुह पर कालिख पोतते रहे। किसलिये मुझे ऐसा वदला दिया है तुमने? कम से कम इतना तो वताओ मुझे..."

जारामवाई ने वाख्तीगुल से ऐसे कभी वातचीत नही की थी। हल्केदार आग-ववूला हो रहा था, लाल-पीला हुआ जा रहा था। वाई ने सच्चे और ईमानदार आदमी के जोश के साथ अपना दामन साफ वचाते हुए अपने नौकर से हकीकत वताने की माग की। वाख्तीगुल यह सुनकर हैरान हो रहा था कि उसका अन्नदाता उसे ही अपराधी ठहरा रहा है।

"मेरा क्या कुसूर है, मेरे मालिक? आप ऐसे विगड़ क्यों रहे हैं! मेरे लिये क्या और शब्द नही थे आपके पास? पहले यह तो वतायें कि मेरा अपराध क्या है, फिर तरस खाये विना कड़ी से कड़ी सजा दीजिये! झूठे आरोप सुनकर मन को वहुत दुख होता है। पहले हकीकत जान लीजिये, पहचान लीजिये..."

"कुछ भी नही जानना मुझे! वैसे ही नजर आ रहा

है मुझे कि यह तुम्हारा ही काम है... तुम्हारी ही करतूत है... सच-सच कहो : ओराज कुल के गाव से, बुर्गेन्स्क हल्के से तुम दो मुश्की और एक बादामी घोडा तथा बछेरोंवाली दो घोड़ियां चुरा लाये थे न? तुम्ही चुरा कर लाये थे... तुम्ही चुकाओ अब इनकी कीमत।" हल्केदार ने धमकाते हुए कहा।

वाख़्तीगुल मालिक की ओर देखता हुआ चुप रहा। घोड़े भगा लाया तो भगा ही लाया... जो सच है, वह तो सच ही रहेगा... वाख्तीगुल इनकार करना, उसके सामने ही झूठ बोलना नही चाहता था। मगर यह मालिक क्या ढोंग कर रहा है–उसी के हुक्म से तो ओराज कुल के घोड़े भगाये गये थे। इस वात के यहा वहुत से गवाह भी थे। मगर वे भी वाख़्तीगुल की ओर देखते हुए खामोश थे।

क्या मालिक ने नाता तोड़ लिया, अपने सरदार की ओर से मुह मोड़ लिया? नही, ऐसा नही हो सकता।

ऐसा तो वह केवल दिखावे के लिये कर रहा है... परायों के सामने.. उनकी आंखो मे धूल झोंकने के लिये... वाई ज्यादा अच्छी तरह से यह समझता है कि उसे क्या करना और क्या कहना चाहिये। इस समय इससे उलझना, उसके खेल मे खलल नही डालना चाहिये। शायद उसने कोई दूर की बात सोची है, कोई गहरा हिसाव-किताव जोड़ा है।

"तो मैंने न तो पहले ही कभी चालाकी से काम लिया है और न अव ही ऐसा करना चाहता हू," दूरदर्शी वाख्तीगुल ने कहा। "सव कुछ तुम्हारा ही तो है, मालिक, हमारे पेट

भी और जान भी। मैं तुम्हारी बात थोड़े ही काटूंगा! मेरा इन्साफ तुम्हारे हाथ में है और तुम्हारा अल्ला के! घोड़े तो भगाये हैं मैंने। जो मनमाने सो करो ताकि ओराज़ो का पूरा हिसाब चुकता हो जाये। मुझे और कुछ नहीं कहना।"

सफ़ेद और काली दाढ़ियोंवाले सभी एकबारगी चहक उठे, हिले-डुले, उन्होंने आखें सिकोड़ीं और उंगलियां दिखा-दिखाकर धमकाने लगे। चरवाहे की बात उन्हें पसन्द आई। हुकूमत को हमेशा यही अच्छा लगता है कि उसके सामने सिर झुकाया जाये।

फिर से हल्क़ेदार की समझदारी और न्याय की प्रशंसा सुनाई दी। किसी ने बाक़्तीगुल के बारे में कहा:

"है कंगाल, मगर दिल ख़ान जैसा दिलेर है। मर जायेगा, पर सचाई कहेगा।"

दूसरा बोला:

"ज़रूरत होने पर आदमी की हत्या भी कर डालेगा, पर मालिक से नहीं छिपायेगा। अगर भगा ही लाया है घोड़े, तो कहता है कि ऐसा किया है..." इस तरह भी हल्क़ेदार की ही प्रशंसा की गई थी।

इस समय बाक़्तीगुल को भी खुशी हुई कि मालिक को उसकी बात पसन्द आई है।

फिर भी एक बात उसकी समझ में नहीं आ रही थी। इधर-उधर नज़र दौड़ाने पर उसे शिकायत करनेवाले ओराज़ कुल के लोगों के क़रीब ही दोसाई कुल के लोग बैठे दिखाई दिये... बाक़्तीगुल को अपनी आंखों पर विश्वास

नही हुआ। यह कैसे हो सकता है? गर्मी भर उनके बीच सख्त दुश्मनी रही और अब ऐसे घुले-मिले नजर आ रहे हैं मानो नज़दीकी रिश्तेदार हों। ऐसे घुटने से घुटना सटाकर बैठे हैं मानो उनके बीच किसी तरह की कोई दुश्मनी, कोई मतभेद ही न हो।

यहा तो अपने आदमी के खिलाफ, वास्तीगुल के विरुद्ध कार्रवाई हो रही थी। बेशक उसने साफ-साफ अपना कुसूर मान लिया था, किसी तरह की कोई अगर-मगर नही की थी, फिर भी हल्केदार की आवाज धीमी न हुई, उसके चेहरे पर नर्मी की झलक दिखाई न दी। अब जारासवाई गुस्से से ऊची आवाज मे भला-बुरा कहने लगा और आखिर मे धमकाते हुए बोला:

"अब तुम आगे मुझसे किसी तरह की रियायत की उम्मीद न करना। मैंने तुम्हारी पीठ थपथपायी, तुम्हे अपने कलेजे का टुकड़ा बनाया, तुम्हे अपना माना—आखिर क्यो? तुम्हारी ईमानदारी के लिये। अगर और गड़बड़ करोगे, सचाई के रास्ते से एक कदम भी और हटोगे तो उसी घड़ी से मेरा तुम्हारा कोई सम्बन्ध नही रहेगा, मैं तुम्हारे लिये बिल्कुल अजनबी हो जाऊगा। बहुत सोच-समझकर कदम उठाना .."

"यह तो अब हद ही हो गई।" वास्तीगुल ने सोचा, मगर खामोश रहा।

दूसरे लोग भी चुप रहे। हल्केदार की आवाज, उसके गुस्से, भलाई की बातों और उसकी भारी आवाज के उतार-

चढाव ने मानो उन्हें यन्त्रमुग्ध कर दिया था, उनका मन जीत लिया था, उनका मन मोह लिया था। वहुत ही गजव की आवाज़ थी उसकी, सचमुच ख़ुदा की वढिया देन। सचाई और न्याय के रक्षक की ऐसी ही आवाज होनी भी चाहिये।

वाई ने ओराजो मे से सवसे वड़े की ओर संकेत करते हुए वाख्तीगुल से कहा.

"चुराये गये घोडो का यह मालिक अव तुम्हारे साथ जायेगा। तुम उसे अपने घर ले जाओ और ख़ुद अपने हाथों से चार वढिया घोडे दो। वे चुराये गये घोड़ों से उन्नीस नही होने चाहिये ("मगर वे चुराये हुए घोडे कहां गये," – वाख़्तीगुल के दिमाग मे यह सवाल आया)। इसके अलावा अपने कुसूर की माफी के रूप मे एक घोड़ा और एक ऊंट भी देना... यही उचित और न्यायपूर्ण होगा।"

कुछ कहने के लिये वाख़्तीगुल ने मुह खोला, मगर वह हकवकाकर चुप ही रह गया। उसे ऐसा प्रतीत हुआ मानो किसी ने उसके सिर पर डंडा दे मारा हो। आसपास वैठे लोग ऐसे चुप रहे मानो उन्हे सांप सूघ गया हो। स्पष्टत: वे भी आश्चर्यचकित थे...

वाई को मालूम है, वहुत अच्छी तरह मालूम है कि वाख़्तीगुल के पास कितने और कैसे जानवर इकट्ठे हो गये हैं। वह सव जानता है और उसने आधे से अधिक दे देने के लिये कहा है .. ऊंट देने का भी आदेश दिया है!

नही, नही, जारामवाई वाद मे उससे ज्यादा जानवर लौटा देगा, जितने उसने वाख़्तीगुल से लिये हैं। जरूर ऐसा

ही होगा! मालिक बाद में उसे बुलायेगा और परायों की अनुपस्थिति में उसे तसल्ली देकर शान्त करेगा। आज्ञाकारी नौकर को उसके जानवर वापिस देगा, उससे कुछ मधुर शब्द कहेगा ताकि न तो वाख़्तीगुल की दौलत में कोई कमी हो और न मन में ही कोई मैल बाक़ी रहे। यही उचित और न्यायपूर्ण होगा।

ग्रोराज कुल के लोगों और बुजुर्ग सारसेन को अपने साथ ले जाते हुए बाख़्तीगुल ने ऐसे ही सोचा। सारसेन को इस बात की जांच करने के लिये भेजा गया था कि हल्क़ेदार के हुक्म की पूरी तरह तामील की गई या नहीं।

मगर एक, दो और फिर तीन दिन गुजर गये। हल्केदार ने वाख़्तीगुल को नहीं बुलवाया। मालिक को फुरसत ही नहीं थी। बहुत-से अत्यधिक महत्त्वपूर्ण काम थे जिन्हें टाला नहीं जा सकता था। बाई वाख़्तीगुल को भूल गया था। अपने जानी दुश्मन को ख़ुश करने के लिये उसने अपने वफादार नौकर को घड़ी भर में लूट लिया, बुरी तरह उसकी बेइज्जती कर डाली.. आन की आन में उसे रौंद डाला... रौंदे हुए की ओर नजर घुमाकर देखा भी नहीं। क्यों ऐसा किया है उसने?

वाख़्तीगुल की समझ में कुछ भी नहीं आ रहा था। हातशा का चेहरा उतरा हुआ था, आखें सूजी-सूजी थी। सेइत अपने पिता को ओर अनबूझ, कभी विचारों में डूबी और कभी उदासीन नजरों से देखता। कभी-कभी लड़का अपने अव्यक्त विचारों में खोया-खोया जरा सा हंस देता।

वाल्तीगुल इसके कारण खीझता और साथ ही डर भी जाता।

तरह-तरह की अटकलें लगाकर परेशान हुआ वाल्तीगुल अपने पड़ोसियों और पास के गांवों में रहनेवाले दोस्तों के पास अपने दिल का दर्द सुनाने, उनसे सलाह-मशविरा करने और हालात का जायजा लेने के लिये गया। वह यह जानना चाहता था कि आगे उसे क्या करना चाहिये। मगर वे लोग कन्नी काटते-से प्रतीत हुए। किस्से-कहानियां और अफवाहें सुन-सुनकर उसका सिर चकराने लगा—जिन्दगी भर नहीं समझ पाऊंगा मैं इन्हें। अपने भाई तेक्तीगुल की मौत के बाद के समान ही अब फिर से उसे लगा कि जैसे वह कारवां से पिछड़ गया है, रेगिस्तान में अकेला रह गया, भटक गया है, कि उसके लिये आशा की कोई किरण बाकी नहीं बची। फिर से पत्थर की निर्दयी दीवार की भांति उसका निष्ठुर भाग्य उसके सामने आ खड़ा हुआ है। सभी लोग, सारी दुनिया दीवार के उस ओर है। वह एकदम अकेला, कटी हुई उंगली, टूटे हुए बाल के समान है।

गर्मी के दिनों के धावे तो बढ़िया दावतों के समान थे... पतझर में उनका नशा उतर गया था। मगर जाहिर है कि नशा उतरा था गरीबों का, मोटी तोंदवालों का नहीं। जैसा कि बाप-दादों के समय होता था, वैसे ही अब भी काला सफेद और सफेद काला हो गया था। [illegible] के भाई इस [illegible] में एक ही उस्ताद थे! [illegible] और [illegible] ऊंचा किये हुए घूमते थे और [illegible] में [illegible]

पकड़कर खींचा जा रहा था। विल्कुल जाना-पहचाना और वहुत पुराना था यह दृश्य!

जैसे ही चुनाव खत्म हुए और हल्कों में धावों का शोर-शरावा कम होने लगा, वैसे ही प्रदेश में इस सिलसिले में कदम उठाये जाने लगे। पुलिस के वड़े-वड़े अधिकारियों के लम्बे-लम्बे कान खड़े हुए। इन मामलों की तरफ नगर के वड़े-वड़े दफ्तरों का अपना ही रवैया था· किर्गीजियों के वीच (उस जमाने में कजाखों को यही संज्ञा दी जाती थी) पूरी टोलियों की घुड़दौड़ आम हो गई है... लड़ाकू हल्कों ने सिर ऊपर उठाया है। खुदा न करे कि यह वीमारी किर्गीजियों से कज्जाकों में फैल जाये...

चौकीदारों और पुलिसवालों की रिपोर्टों से साफ है कि अवज्ञा फैल गयी है। अफसरों की, ऊपर से लागू किये कानूनों की कोई परवाह नहीं करता।

हल्केदार एक-दूसरे के खिलाफ जो खुशामद भरे शिकायती खत भेजते थे, वे जलती आग में घी का काम करते थे। उनके कागजों में विद्रोह, विद्रोही, उकसानेवाले और चोर जैसे ढेरों ढेर भयानक शब्द भरे रहते... अफसरों की भाषा में 'चोर' और 'विद्रोही' एक ही वात थी।

पतझर के एक ठंडे दिन अचानक पुलिस के एक वड़े अफसर के हुक्म की मानो विजली कड़की और सारा प्रदेश कांप उठा। सभी हल्केदारों, सभी काजियों को कड़ी पूछ-ताछ और जांच करने तथा डांट-फटकार के लिये शहर में वुलाया गया।

अव तो सारे प्रदेश में हंगामा मच गया। शीशे की दवातों

ग्रौर संगमरमर के स्याही चूसदानों से सजी हुई मेजो के पास बैठे हुए बड़े-वडे ग्रौर छोटे-छोटे ग्रफ़सरो ने ग्रपना पूरा रंग दिखाया। पुरानी ग्रादत के ग्रनुसार लोगों को डराया गया... चुने हुए हल्केदारो को पदो से हटाने की धमकी दी गई ग्रौर कुलो तथा पार्टियो के मुखियों को उनके गावो से निकाल देने का डर दिखाया गया। इस शोर-गुल मे उन्होने घूस ले लेकर ग्रपनी वडी-वड़ी जेबें खूब गर्म की।

यह हिदायत करते हुए उन्हे छोड़ दिया जाता :

"श्रीमान वाई, तुम्हारे इलाके मे शान्ति होनी चाहिये!"

डाट-डपट का मोटी तोंदोवालों पर ग्रच्छा ग्रसर हुग्रा। घोड़ियो का दूध पी पीकर उन्हे जो नशा चढा था, वह घडी भर मे उतर गया। यहा तक कि प्लेग की तरह मार्जि-शो की लाइलाज बीमारी भी मानो कम होने लगी।

विरोधी दलों के मुखिया खूब हो-हल्ला करते हुए नगर की ग्रोर ऐसे गये मानो कोई पर्व मनाने जा रहे हों। वहा उन्होंने जैसे होड़ करते हुए वढ-चढकर दावते करनी शुरू की... भूरे ग्रौर दूसरे रगो के, पदमवाले ग्रौर विना पदमों के घोड़े काटे गये, ऊची-ऊची ग्रावाज मे क़ुरान पढा गया ग्रौर इन ग्रमीरज़ादों ने ग्रपने नर्म-नर्म ग्रौर सफ़ेद-सफ़ेद हाथ ग्रासमान की ग्रोर उठाकर लडाई-झगड़ों को खत्म करने ग्रौर वांछित सुलह कर लेने का ग्राह्वान किया। ग्रन्त में वलि के रक्त ग्रौर वहुत-से गवाहों के सामने क़समें खाई गईं कि ग्रव सदा के लिये वे जनता मे लड़ाई-झगड़े ग्रौर चोरी-चकारी का

अन्त कर देंगे, उन्होंने बडी मक्कारी से यह ढोंग किया कि न तो हम यह जानते ही हैं कि किसने चोरी शुरू की और न हमें किसी पर सन्देह ही है।

दूसरो के उदाहरण का अनुकरण करते हुए जारासबाई ने भी अन्य लोगो के सामने साट से सुलह कर ली।

सुलह बहुत आसानी से हुई। पकी दाढ़ियोवाले इन दरिन्दो, झूठों के इन सरदारों ने इशारों से ही सब कुछ समझ लिया और मन ही मन पहले से ही यह तय कर लिया कि वे किसे दोषी ठहरायेंगे और पुलिस को खुश करने के लिये किसे मुसीबत का शिकार बनायेंगे, यद्यपि खुले तौर पर किसी का नाम नहीं लिया गया था।

बहुत अर्से से ही यह सिलसिला चला आ रहा था—प्रदेश मे जब तक घूस नही देगा, चैन नही मिलेगा। मगर इस बार खास किस्म की घूस मागी जा रही थी—लोगों की घूस... अपराधियों की माग की जा रही थी...

शहर मे जारासबाई का एक अपना आदमी था—दुमापिया तोकपायेव। जारासबाई उससे अपने दिल की बात कहता था, उससे कुछ भी नहीं छिपाता था। तोकपायेव उसके लिये रक्षक-देवता, अथवा यदि अधिक सही तौर पर कहा जाये तो मुखबर-फरिश्ता बन गया था। वह उन फ़रिश्तो मे से था जो जाड़े और गर्मी मे लगातार चढ़ावे और रुपये-पैसे पाते रहते है। मगर मे रहनेवाले इसी आरामानी फरिश्ते ने कुछ समय पहले साट को जेल भिजवाने मे जारासबाई की मदद की, जिस के लिये उसने ठीक समय और उचित

स्थान पर उचित रकम देकर उचित कागजात पर हस्ताक्षर करवाये थे।

चुनावों के बाद दुभाषिये ने अपने शहर के मकान में जारासबाई की दावत की और एकान्त में खुसुर-फुसुर करते हुए चेतावनी दी :

"बड़ी सरकार बहुत नाराज है... ढेरों शिकायतें आई हैं कि तुम अपने पास चोरों को शरण दिये हुए हो और *उनमें घोड़ों के जाने-माने चोर भी शामिल हैं।*"

तोकपायेव ने सलाह दी कि जारासबाई आंख में खटकनेवालों में से किसी एक को बड़ी सरकार को सौंप दे...

"मुख्य बात तो यह है कि उसे खुद अपनी बाई की अदालत में ही दण्ड देकर और फंदे में कसकर अपने ही लोगों के पहरे में नगर लाया जाये। असली चीज़ तो इसका पूरा नाटक पेश करना है।"

यह सब कुछ वास्तीगुल नहीं जानता था।

चेल्कारर्क हल्के के काज़ियों की बैठक नज़दीक आती जा रही थी। जब झगड़ों और लड़ाइयों के बहुत-से कागज जमा हो जाते तो हल्केदार तीन-चार महीनों में एकबार ऐसी बैठक बुला लेता था।

प्रायः यह होता था कि काज़ी मामलों पर विचार और बहस-मुबाहिसा करते, मगर हल्केदार उनकी पीठ पीछे यह कहता रहता :

"न तो मैंने फ़ैसला किया है और न ही सज़ा दी है-बुज़ुर्गों और बुद्धिमानों ने ही ऐसा किया है..."

मगर अगली बैठक मे काज़ी ऋणो के सामान्य झगड़ों को तो छूनेवाले भी नही थे। वे तो किसी ख़ास महत्त्वपूर्ण मामले पर विचार करनेवाले थे, जिसके लिये विशेष समझ-बूझ की जरूरत थी। इसीलिये बहुत बेकरारी और खास दिलचस्पी से बैठक का इन्तजार किया जा रहा था। वे इन्तज़ार कर रहे थे और हल्केदार को जल्दी करने के लिये कह रहे थे। *वास्तीगुल को इस बात की भी जानकारी नही थी।*

मुसीबत के मारे की मुसीबतें ऐसे ही बढती जाती हैं जैसे फटे-पुराने कुरते में पैवन्द। इसी समय जब वास्तीगुल को कोई रास्ता नही सूझ रहा था और वह पडोसियो से सलाह-मशविरा करता फिर रहा था, कोजीबाकों के कई घोड़े ग़ायब हो गये। चोर और चोरी के माल का कही कोई निशान नही मिला। कोजीबाकों ने झटपट वास्तीगुल को चोर ठहरा दिया। अगर कोई सुराग नही मिला तो इसका मतलब है कि घोडे उसी ने चुराये हैं। ऐसे ही तो यह मसल मशहूर नही है कि बद भला, बदनाम बुरा।

चुराये गये घोडों की खोज करने के लिये दो आदमी आये। वे वास्तीगुल के घर मे घुस गये और एक साल पहले की तरह ही सब जगह और हर कोने मे ताक-झाक करने लगे। वास्तीगुल को शुरू मे तो इस बात की हैरानी हुई कि ये शोहदे पराये हल्के मे अपने हल्के की तरह ही मनमानी कर रहे हैं। सच है कि उनसे और आशा ही क्या की जा सकती थी? कोजीबाक जो ठहरे! फिर भी वास्तीगुल ने उन्हे



शराफत से विदा करने की कोशिश की। मगर वे नहीं गये। मालिकों की तरह ही चीखते हुए बोले :

"क्या पिछले साल की सी दुर्गति कराना चाहते हो? फिर से हमारे कोड़ों का मजा चखना चाहते हो क्या?"

वाम्तीगुल आग-बबूला हो उठा। उसने अपने घुटनों तक के बूटों में से काली मूठवाली पतली और लम्बी-सी छुरी निकाली :

"चीर डालूंगा तुम्हें... कमीने कुत्तो!"

बहुत गन्दी जबान वाले ये दोनों गुंडे तो दिखावे के ही तीसमार खां निकले। छुरी देखते ही वे दोनों गालियां देते हुए अपने घोड़ों की ओर लपके। बहुत देर तक वे बहुत ही गंदी गालियां बकते हुए वाम्तीगुल के घर के सामने चक्कर काटते रहे। इन गीदड़ों को मालूम था कि बबर उनका पीछा नहीं करेगा।

उसी दिन हातशा ने मांस का एक बड़ा-सा टुकड़ा उबाल-कर बहुत बढ़िया पकवान तैयार किया और इसे लेकर हल्केदार के गांव में जारासबाई के घर गई। मगर बाई की बीवी कदीशा ने तो सुरमा लगी अपनी भौंहें चढ़ा लीं और मांस की ओर देखा तक भी नहीं। हातशा उसे सम्मानपूर्वक मौसी-मौसी कहती रही, मगर वह जवाब में केवल अपने होंठों को टेढ़ा और घमंड से फूं-फां करती तथा खीसें निपोरती रही। मालकिन की देखादेखी जानवरों की देखभाल करनेवाली और घर की नौकरानियां भी हातशा का मजाक उड़ाने लगीं, उसके हर शब्द के जवाब में ताने-बोलियां और खुले तौर पर फब्तियां कसने लगीं।

हानशा ने ठीक मौका देखकर जारासबाई के सामने उसकी बीवी से अपने बेटे सेइत के बारे में कहा·

"उस बुद्धू को मुल्ला के पास पढ़ना बहुत पसन्द आया है। चैन नही लेने देता। अपनी ही रट लगाये रहता है–'जाड़ा तो आया कि आया, कब से भेजोगे मुझे पढने के लिए? .. मैं नही जानती कि उसे क्या जवाब दू।"

मगर हल्केदार और उसकी बीवी ने तो उसकी ओर देखा तक नही, मुह से एक फूटा शब्द भी नही निकाला मानो हानशा तो वहा थी ही नही। बहुत ही क्षुब्ध और डरी हुई वह अपने खस्ताहाल घर मे लौट आई।

तब वाद़ीगुल बाई के पास गया और जल्द ही गुम-सुम और उदास-उदास वापिस आ गया। हल्केदार के गाव मे लोग माथे पर बल डालकर उसकी ओर देखते, सीधे मुह बात तक न करते। उसकी ओर उगलिया उठाते और उसकी मुसीबतो का मजा लेते हुए पीठ पीछे जहरीले तीर छोड़ते–

"घमंडी कही का.. " बाई के हाल के चहेते और सरदार ने, जो अब सभी से ठुकराया-बिसराया जा चुका था, इसी तरह अलग-थलग रहकर दस दिन और गुजार दिये। वह घर से बाहर नही निकला, किसी को उसने अपनी सूरत नही दिखाई और व्यर्थ ही यह अनुमान लगाता रहा कि क्या बात हो गई है और क्या होनेवाली है। वह तो मानो जेल मे बन्द था और केवल किसी अजनबी राहगीर की जबानी ही उसे यह पता लगा कि बेल्कार मे काजियो की बैठक शुरू हुए तीन दिन गुजर चुके है।

लोगो का कहना था कि वहुत ही क्रूर, वहुत ही गुस्सैल काजी वहा इकट्ठे हुए हैं। वे वडी सख्ती से जाच-पड़ताल करते हैं और वहुत ही कडी सजा देते हैं, न कोई दया, न रहम करते हैं। ऐसा भी सुनने मे आया मानो उन्होंने एक काली सूची तैयार की है, जिसमे लगभग वीस आदमी हैं जिन पर चोरी का इल्जाम लगाया गया है। कौन लोग हैं इस सूची में, यह किसी को मालूम नही था। पर इतना विल्कुल स्पष्ट था कि ये वदक़िस्मत जेल जाने से नही वच सकेंगे।

खुदा जाने कहा से, मगर हातशा ने उनमें से एक का नाम मालूम कर लिया। यह था—जादीगेर। यह सुनकर वाप्तीगुल डर से बुरी तरह कांप उठा। पूरे साल में उसने ऐसा डर एक वार भी महसूस नही किया था। जवान जादीगेर गर्मियों में धावो के वक़्त वाप्तीगुल का दाया वाजू रहा था।

"ये वदमाश जानते हैं कि किसे निशाना वनाया जाये, किसे मुसीवत में फसाया जाये," वाप्तीगुल ने अपने-आप से कहा: "मेरी वारी आनेवाली है।"

इन दिनों वह एक वार भी नही मुस्कराया, उसने मुंह में एक कौर भी नहीं डाला, आख तक नहीं झपकायी और किसी से एक वात तक नही की। फ़र की टोपी को आखों तक खीचकर वह फटी-पुरानी चटाई पर चित लेटा रहा, हिला-डुला भी नही मानो उसे जकड़ दिया गया हो। उसे प्रतीत होता मानो उसकी ज्योतिहीन आंखों के सामने दुनिया उल्टी होकर रह गई है।

वह लेटा हुआ अपने बुलावे का इन्तजार करता रहा।

और उसे बुलाया गया। हरकारे का सम्मानपूर्ण थैला लिये हुए एक आदमी आया और उसे अपने साथ लिवा ले गया।

बहुत बडे, ऊंचे और साफ़-सुथरे ख़ेमे में कोमल पंखों वाले गद्दों और रोयेंवाले तकियों पर मोटी तोंदोंवाले लेटे हुए थे। वे दिन-रात मांस खाते रहते थे—खा खाकर उनके दिमागों पर भी चर्बी चढ़ गई थी। वे खाते थे और मुकदमों की कार्रवाई चलाते थे... वे उन गावों के कुत्तों के समान लगते थे, जहां महामारी से ढोर मर गये हैं। खूनी आंखें, गर्दन के उभरे बाल और टांगों के बीच दुमें दबाये हुए पागल कुत्तों के समान जो भरे ढोरों को चट करने के बाद इन्सानों पर झपटते हैं।

बाक़ीगुल मुश्किल से ही ऐसे कदम रखता हुआ मानो लम्बी बीमारी भोग कर उठा हो, धीरे-धीरे अन्दर आया और सलाम करके दरवाजे के पास खड़ा हो गया। किसी ने भी उसकी ओर सहानुभूति से नहीं देखा, न तो कठोर अध्यक्ष ने और न ही स्नेहपूर्ण सारसेन ने। काज़ियों ने दूसरी ओर मुंह फेर लिया मानो उसका सलाम लेते हुए डरते हों। टुकड़खोरों ने, उल्टे, अपनी मछली जैसी अभिव्यक्तिहीन आंखें उसके चेहरे पर गड़ाकर उसे घूर-घूर कर देखा और उनके चेहरों का तो इसलिए रंग उड़ गया कि वह उन्हें सलाम कर रहा था। वहां एक भी तो ऐसा आदमी नहीं था जो उसके स्वास्थ्य, परिवार और घर-बार का हालचाल पूछता।

"अब तो समझ रहा है न कि ऊँट किस करवट बैठने जा रहा है?" वाफ़्तीगुल ने ज़रा हँसकर अपने-आप से पूछा। अचानक उसने राहत की सांस ली। ऐसी राहत पाने की तो उसने ख़ुद भी उम्मीद न की थी।

उसे लगा मानो उसकी आत्मा में उजाला हो गया, दिमाग़ में हर चीज़ सुलझ गई है। यह तो जानी-पहचानी और पुरानी चाल है। बात इतनी ही है कि दुनिया में इन्साफ़ नहीं है और कभी नहीं होगा। बस, ऐसा ही है।

"मैं बिल्कुल बेकुसूर हूं, कोई अपराध नहीं किया मैंने," वाफ़्तीगुल ने अपने-आप से कहा। "अगर मैं चोर हूं तो तुम चोरों के भी बाप हो। तुम न तो मुझे अपराधी कह सकते हो, न मेरा निर्णय कर सकते हो। ख़ुदा मेरा गवाह है!"

इधर वाफ़्तीगुल ख़ुद अपने से बहस कर रहा था, अपनी सफ़ाई पेश कर रहा था, उधर क़ाज़ियों ने मुक़दमे की कार्रवाई शुरू कर दी।

ज़ाहिर है कि कोज़ोबाक मुद्दई थे और क़ाज़ी कोज़ीबायों के मुखिया की बातें बहुत ध्यान से सुन रहे थे। उसकी बातें सुनने के बाद उन्होंने खांस कर अच्छी तरह गला साफ़ किया, गम्भीर हुए और पूरे ज़ोर-शोर से सभी एक साथ अभियोगी पर झपट पड़े।

पर उन्होंने चाहे कितना ही हंगामा किया, वाफ़्तीगुल ने हार नहीं मानी। पहले की भांति अब भी उसने जुर्म से इनकार नहीं किया। उसने एक दूसरे और फिर बाई को बेधड़क जवाब दिये:

"मैंने न तो पहले कभी सचाई को छिपाया है और न अब ही छिपाऊंगा। कोज़ीवाकों के जानवर मैंने चुराये हैं।"

"किसलिए चुराये? क्यो चुराये?"

"क्योंकि आपके दल मे था।"

चेल्कार के काज़ी कुछ देर के लिएँ चुप हो गये। उन्होंने नाक-भौंह सिकोड़ी और चुपचाप एक-दूसरे की ओर देखा। नाटे, मोटे और सूओ जैसी सीधी मूछोंवाले कोज़ीवाक काज़ी ने स्थिति को सम्भाला।

"ओह, यह तुम्हारा दल... किस्मत का मारा तुम्हारा यह दल!" खूब ज़ोर से ठहाका लगाया उसने। "किसकी इसने सेवा नहीं की, इस बेचारे दल ने? लगता है कि तुम्हे भी उसने गधे की तरह अपनी पीठ पेश कर दी, हाय, हाय!"

चेल्कारियो मे ज़रा हलचल हुई, उन्होंने दात निपोरे और अपने चिकने होठो पर ज़बान फेरी।

"यह जानना दिलचस्प होगा कि साट या ओराज कुल के दल के लोगों के साथ तुम्हारा क्या हिसाब-किताब है? हो सकता है कि तुमने किसी जन-सभा मे उनसे झगड़ा किया था, चेल्कारियो की सत्ता की रक्षा के लिए मोर्चा लिया था, जनता की जरूरतो के लिए सीना तानकर खड़े हो गये थे? लगता है कि मैं भूल गया हू कि यह कब हुआ था... हमें ज़रा याद करा दो, इतनी मेहरबानी करो!"

काज़ी ज़ोर से हस दिये और पेट पकड़कर उन्होंने तकियों के साथ टेक लगा ली।

"तुम जरा यह भी याद दिला दो कि किस हिसाब के बदले में तुमने कोजीवाको के उक्त पांच घोडे लिये? हां, तो प्यारे, याद दिलाना तो उक्त पांच घोडों की! .."

वास्तीगुल ने हैरान होते हुए उदासी से इधर-उधर देखा। किस बात पर वे हंस रहे हैं? शुरू मे तो उसने सचमुच यह याद करने की कोशिश की कि वे किन पांच घोड़ो की चर्चा कर रहे हैं। मगर कुछ देर बाद खुश होते हुए क़ाजियों की ओर देखकर उसने खुद भी खीसें निपोर दीं। वे तो हमेशा खुश रहते हैं, वे तो सभी खुश रहते हैं – अपने भी, पराये भी, मुद्दई भी और निर्णायक भी।

"मैंने पांच ही नहीं, बहुत से और बहुत बार घोड़े चुराये हैं..." वास्तीगुल ने भारी आवाज मे कहा। "आप लोगों से यह थोडे ही छिपा रह सकता है कि मैंने कितने घोड़े लिये हैं। निश्चय ही यह सही है कि अपनी परवाह न करते हुए मैंने अपने हल्क़े के लिए सब कुछ किया – तुम लोगों के लिए लड़ा-भिड़ा, हर तरह की मुसीबतों का सामना किया। मालिक के लिए, उसकी भलाई के लिए अपने सिर तक की परवाह नही की..."

काजियों में एकबारगी हलचल मच गई, ये उसकी बात मे बाधा डालते हुए शोर मचाने लगे।

"ए यह तुम क्या बकवास कर रहे हो, बात को कहां से कहां लिये जा रहे हो!"

"लड़ा. . भि... ड़ा!. जरा दिलेरी तो देखो इसकी... कहां से सीखे हो ऐसे शब्द?"

"लड़ना और चुराना, उसके लिए दोनों का एक ही अर्थ है।"

"खुद ही तो माना है इसने कि पांच नही, वहुत घोडे चुराये हैं.. "

"मेरी समझ मे कुछ नही आ रहा," वाल्तीगुल ने अपने गुस्से पर काबू पाते हुए धीरे से कहा। "सम्मानित लोगो, आप क्या चाहते हैं मुझ से?"

"तुम्हारे अपराधो के लिए तुम्हारे खिलाफ कार्रवाई कर रहे हैं," सबसे बुजुर्ग काज़ी ने बडे घमंड के साथ जवाब दिया। "हम तुम्हे अनाप-शनाप बकने से मना करते हैं! समझे!" अपने कहे शब्दो से खुश होते हुए उसने अपनी सफेद दाढ़ी पर शान से हाथ फेरा। "छोटे मुह बड़ी बातें न करो, जो कुछ तुम्हारी शक्ति और तुम जैसे चरवाहे की अक्ल से दूर की बात है, उसे कहने की तुम्हे हिम्मत नही करनी चाहिए! जिन्हें ऐसी बातो का फैसला करना चाहिए, जिन्हे खुदा ने इसके लिए भेजा है, वे अपने रोशन दिमागो का इस्तेमाल कर ख़ुद ही अपने मामले सुलझा लेगे। तुम्हें इनसे कुछ लेना-देना नही। हमारे हल्क़े के दल ने वहुत पहले ही इन पाच घोडो और बाकी सभी चीजों का हिसाब चुकता कर दिया है। मैं कहता हू—बहुत पहले और पूरी तरह! और अपने हाथ साफ़ कर उसने क़ानूनी मुद्दई को सही और सचाई की राह दिखाई है। जब तुम्हें जवाब देने के लिए बुलाया गया है तो तुम अपने अपराधों के लिए जवाब दो!"

"मगर मेरा अपराध ही क्या है?" वाख़्तीगुल ने हताश होते हुए पूछा। "अपने लिए तो मैंने घोड़े चुराये नहीं और उन्हें चुराकर धनी भी नही हुआ। मैंने तो अपनी इच्छा के विरुद्ध केवल हुक्म की तामील की। शायद यही मेरा कुसूर है कि जो हुक्म मिला, मैंने वही किया? बताइये मुझे? .."

"यह भी ख़ू... ब रही! चोरी करने का भला तुम्हें कौन हुक्म दे सकता था?" बेशर्मी से आखे फाड़कर उसकी ओर देखते हुए एक कोजोवाक ने पूछा।

वाख़्तीगुल ने सिर झुका लिया। वह असमजस में था। इन लोगों की ओर देखते हुए, उनकी वाते सुनते और उनके जवाव देते हुए उसे शर्म आ रही थी।

"तो लग गया जबान मे ताला? दूसरों के मत्थे कलंक मढनेवाले..."

"अच्छा यही हो कि वे ख़ुद ही अपना दोष मान लें," वाख़्तीगुल ने दुखी होते हुए कहा। "उन्हे ढूंढने मे समय नही लगेगा। कही दूर भी नही जाना पड़ेगा... ये देखिये, वे सम्मानित स्थानो पर बैठे हैं," इतना कहकर उसने सारसेन और फिर कोकिश की ओर सकेत किया जो इसी समय अपने हाथों मे बेंत का शानदार कोड़ा लिये हुए खेमे में आया था। "बेशक यह छोटे मुह वड़ी वात होगी, फिर भी मैं यह देखना चाहूगा कि वे उन पाच घोड़ों और बाकी सभी चीजों की जिम्मेदारी से अपने को कैसे वचायेंगे... मैं देखना चाहता हूं उनके रोशन दिमाग..."

काजियों ने गुस्से से, अपनी खीझ को छिपाते हुए एक-दूसरे की ओर देखा। टुकड़खोर आपस में ईर्ष्या और द्वेष से खुसुर-फुसुर करने लगे। चरवाहा भूखा-नंगा है, मगर सत्ताधारियों से बहुत दिलेरी और समझदारी से उलझ रहा है। यह गुलाम न्याय की मांग करता है। छठी का दूध आ जायेगा!

सारसेन बहुत रोबीली सूरत बनाये चुप्पी साधे रहा। काला और साड की तरह मोटा-ताजा कोकिश अपने कोड़े से खिलवाड़ करता और भुनभुनाता हुआ मुस्कराया।

"यह बात गाठ बाध लो," कोकिश ने कहा। "दल के झगडे एक चीज है और चोरी दूसरी चीज! हम एक चीज के लिए जवाबदेह हैं और तुम दूसरी चीज़ के लिए। तुम इन दोनों को गड़बड़ाने की कोशिश नही करो... तुम्हारे किये कुछ नहीं होगा! ("यह कोकिश कह रहा है!" वास्तीगुल ने सोचा)। "काज़ियो!" कोकिश ने जल्दी से कहा। "अगर आप लोग इसे मौका दे देंगे, तो वह न केवल हमारे बल्कि अन्य दसियो और खुद जारासबाई के मुह पर भी कीचड़ पोत देगा। हल्केदार ने मुझे आप से यही कहने के लिए भेजा है। उसने कहा है "चुनाव का इससे कोई सम्बन्ध नही, आपके सामने चोर है!.. वह चोर है और उसने यह मान भी लिया है! आप चोर के विरुद्ध कार्रवाई करें और सजा दें!"

वास्तीगुल ने निराशा से अपने खुरदरे हाथ लटका दिये।

"मैं...चोर? यह हल्क़ेदार के शब्द...हैं?" उसने बालक सुलभ भोलेपन से पूछा। फिर भी उसे इस प्रश्न का उत्तर नहीं मिला।

उसकी आंखों के सामने चाहे कुछ भी क्यों न हो रहा था, फिर भी वह मन ही मन यह आशा कर रहा था कि आखिरी घड़ी में हल्क़ेदार का एक शब्द, उसका केवल यह एक वाक्य–"मैं इस बदक़िस्मत की ज़िम्मेदारी लेता हूं"–उसे मुसीबत से बचा देगा। बस, सिर्फ इतना ही तो कहने की जरूरत थी हल्क़ेदार को। इस से ज्यादा कुछ नहीं। चाहे उसके साथ अन्याय किया जाता, फिर भी ज़िन्दगी भर वह मालिक के ये शब्द न भूल पाता। क़ब्र में भी इन शब्दों को अपने साथ लेकर जाता। "मैं बदकिस्मत की जिम्मेदारी लेता हू..."

बाख़्तीगुल की खुरदरी उंगलियों ने अनचाहे ही उसके गाल के उस निशान को छू लिया, जो ठप्पे की तरह उभरा हुआ था और साल्मेन के साथ उसकी आखिरी मुलाक़ात की यादगार था। आज चरवाहे के दिल पर भी ऐसा ही गहरा घाव हो गया और उसका दिल लहूलुहान होकर रह गया।

उसका एकाकी हृदय अच्छी तरह जानता था कि संगदिली क्या होती है, छल-कपट किसे कहते हैं। बहुत अच्छी तरह जानता था वह...

"अगर हल्केदार ने ही ये शब्द कहे हैं," बाख़्तीगुल ने कहा, "और अगर कोकिश झूठ नहीं बोलता, तो मैं मुर्दे की तरह जबान बन्द कर लेता हूं। आप लोग मालिक हैं–मेरी

जिन्दगी का कुछ भी कर सकते हैं, वह कुत्ते से भी गयी बीती है। कभी कोई गरीब आदमी था और अब नही रहा-इससे फर्क ही क्या पडता है। मगर आखिर मे इतना जरूर कहना चाहता हूं कि मैंने तो आप लोगों पर विश्वास किया था. . पर खैर, खुदा आपका भला करे और मैं इसी के लायक हूं . ." अपनी बात पूरी किये बिना ही बाख्तीगुल ने सिर झुका लिया, उठा और खेमे से बाहर आ गया।

वह मानो अधा-सा और अपने होंठ काटता हुआ जा रहा था कि कही कुत्ते की तरह हू-हू करके रो न पड़े। इसी क्षण उसे हल्केदार दिखाई पडा। जारासबाई के साथ बढ़िया लबादे पहने मोटी तोंदोवाले अन्य चार लोग थे। वे बडी शान के साथ बातचीत करते और धीमी चाल से चलते हुए उसके सामने से गुजर गये। जारासबाई ने बाख्तीगुल का सलाम भी न लिया। नजर उठाकर भी उसकी ओर न देखा! यह था हद दर्जे का कमीनापन... यह थी बेहयाई! ..

जारासबाई की पीठ को देखते हुए बाख्तीगुल ने आज पहली बार दांत पीसे।

अर्दली भागा आया और उसने बाख्तीगुल से खेमे मे चलकर अपनी सजा सुनने के लिए कहा। बाख्तीगुल उसके पीछे-पीछे हो लिया।

काजियों ने इन्साफ के नाम पर चुराये गये पाच घोड़ों के बदले मे पाच घोड़े देने और चोरी के लिए तीन साल की जेल की सजा दी।

८

दो हृष्ट-पुष्ट जवान मुजरिम को बाहर लाये।

स्तेपी मे कोई जेलखाना नही था और लोगों को ताले मे बन्द रखने का चलन भी नही था। इसी लिए मुजरिम को शहर भेजने के पहले बेड़ियां पहना दी जाती थी, जिनके कड़ों में बडा-सा ताला लगा दिया जाता था। इस तरह उसके भाग जाने का कोई डर नही रहता था।

शुरू मे तो बाख़्तीगुल के होश-हवास गुम हो गये। वह यह तक न समझ पाया कि उसे कहा ले जाया जा रहा है। वह मानो ऊंघते हुए इन जवानों के बारे में सोच रहा था—कितने कमजोर हैं ये, कैसे मरे-मरे से...

"यहा रुक जाओ," एक जवान ने कहा और दूसरा जाकर जगलगी बेड़िया ले आया। वह बाख़्तीगुल के पैरों की ओर देखते हुए बेड़ियों को अपने हाथों मे इधर-उधर घुमाने लगा।

तब बाख़्तीगुल ने उस जवान को उपेक्षा से ऐसा धक्का दिया कि वह मुश्किल से ही गिरते-गिरते बचा। बेड़ियां नीचे गिरकर मानो कराह उठी। दूसरा जवान बकरे की सी फुर्ती से उछलकर दूसरी ओर को हट गया।

बाख़्तीगुल अपने घोडे के पास गया, उछलकर उस पर सवार हुआ और धीरे-धीरे उसे खेमों के बीच से दौड़ाता हुआ मन ही मन बोला· "लो, मेरा आख़िरी सलाम..."

जवान निहत्थे थे। उन्हे इस बात के लिए दोष नहीं दिया जा सकता था कि उन्होंने तभी शोर मचाया जब विख्यात धावामार अपने घोड़े पर जा चढ़ा था।

"ए, ए! किधर जा रहे हो! रोको! पकडो!"

स्तेपी में कजाख को पकड़ना तो हवा को पकड़ने के बराबर होता है। जवान जब तक चिल्लाते रहे, इसी बीच भगोडा उस पहाड़ी को पार कर गया जिस के पास गांव बसा हुआ था, खड़े किनारोंवाली घाटी में काफी दूर जा पहुंचा और पहाड़ियों के बीच गायब हो गया। पीछा करनेवालों को इस बात के लिए भी दोषी नहीं ठहराया जा सकता कि वे उसका कुछ पता न लगा सके। इन्सान कुत्ते तो होते नहीं... हल्केदार व्यर्थ ही आग-बबूला होता रहा, काज़ी बेकार ही गालियां बकते और उन जवानों को लापरवाही के लिए पुलिस को सौंप देने की धमकी देते रहे जिन्होंने मुजरिम को भाग जाने दिया था। बहुत कीमती शिकार निकल भागा था।

वह अपनी इच्छा के विरुद्ध उस जीवन की ओर चला गया था जिससे हमेशा बचता रहा था और जहां से लौटना सम्भव नहीं था।

बाय्तीगुल कहीं भी रुके बिना सरपट घोड़ा दौड़ाता हुआ घर पहुंचा। हातशा शब्दों के बिना ही समझ गई कि क्या मामला है। उसने न आंसू बहाये, न रोयी-सिसकी और चुपचाप उसके गर्म कपड़े जुटाने लगी।

बाय्तीगुल ने झटपट दूसरे घोडे पर जीन कसा – तेज चाल-वाले मुश्की घोडे पर। इस घडी से यह घोडा ही उसका एकमात्र दोस्त रहेगा। उसने छर्रों से भरी हुई बहुत ही मामूली और पुरानी बन्दूक पीठ पर बांध ली और पेटी में

वह पिस्तौल भी खोल ली, जो वह गर्मी में भी अपने साथ रखता था। अब वह उसके लिए खिलौना नहीं थी।

याद्गोगुल नजदीक की काली चट्टानों के बीच चला गया। वहां उसने अपनी आखिरी भेड़ काटी और उसका मांस जैसे-तैसे अलग किया। आधा मांस उसने परिवार के लिए छोड़ दिया और आधे को खूब नमक लगाकर आंतों की ऊपरी झिल्ली में डाल लिया। झुटपुटा होने पर हातशा उसके लिए पिसा हुआ बाजरा ले आई और याद्गोगुल ने उसे आधी भेड़ दे दी। अपने साथ उसने एक अन्न मोटा-ताजा कत्थई घोड़ा भी ले लिया।

विदा के क्षण तो इने-गिने ही रहे। अपने परिवार को खुदा के हवाले कर और पत्नी से यह कहे बिना ही कि वह कब लौटेगा, याद्गोगुल रात के अन्धेरे में खो गया।

हातशा तब भी नहीं रोई। खुश्क हुए होंठों से वह केवल इतना ही बुदबुदाई. "मुंह में राम राम और बगल में छुरी रखनेवाले गमकार जारासबाई! .. खुदा करे कि तेरी बीवी भी तुझे यहां भेजे, जहां मैं अपने घरवाले को भेज रही हूं।.. खुदा करे कि तेरे बच्चों के साथ भी ऐसी ही बीते जैसी मेरों के साथ बीत रही है..." इतना कहकर उसने ताराहीन आकाश की ओर इस विश्वास के साथ देखा कि कमीने को उसका शाप लगेगा, कि उसे उसकी सजा मे

इसी रात अगोष्ठे के घर में दफादार के भेजे

आ पहुंचे, किन्तु वे हातशा से कुछ भी मालूम न

"सुबह आप लोगो के पास गया था," उसने बनावटी मुस्कान लाते हुए कहा। "अब यह क्या किस्सा हो गया है?" मगर उसकी आखो मे गुस्सा और गर्व झाक रहा था।

दो हफ्ते बीत गये। जारासबाई ने ठीक तरह से खोज कराई, यो कहिये कि चिराग लेकर भगोड़े को खोजा जाता रहा।

दसियो घुडसवार दिन-रात घोड़े पर ही सवार घूमते रहे। उन्होने उत्तर से दक्षिण और पूरब से पश्चिम की ओर सभी पहाड़ छान मारे। बुर्गेन और चेल्कार में सभी जानते थे कि बाज़्तीगुल को ढूढ़ना आसान नही है, कि वह आसानी से हाथ नही आयेगा। इसलिए जारासबाई ने उसे भूखों मारकर पकड़ने का फैसला किया। हल्केदार के लोग बारी-बारी से और घोड़े बदल-बदल कर पहाड़ों और घाटियों, गांवों और जाड़े के झोपड़ो में उसे खोजते रहते, सभी जगह घात लगाते और पहरेदार खड़े करते, ताकि भगोड़े को चैन न मिले, उसका घोड़ा थक-हार जाये, ख़ुद उसकी हिम्मत जवाब दे जाये और इस तरह उसे अशक्त और आतंकित कर पकड़ लिया जाये। पहाड़ो के एक-एक पत्थर, एक-एक दरार को जाननेवाले मशहूर शिकारी, जाने-माने चोर, जो हाथ को हाथ सुझाई न देनेवाले अन्धेरे मे भी रास्ता खोज लेते हैं और डरपोक भेड़ों के पास से भी दबे पांव निकल जाते हैं, उसकी तलाश कर रहे थे।

बाज़्तीगुल उनसे ऐसे ही बच निकलता, जैसे अधेरे मे घुआ। मगर उसे बहुत कठिनाई का सामना करना पड़ता।

जेल एक गूंगे और अंधे तथा बड़े मुंहवाले राक्षस की तरह उसके सामने उभरती। उसे लगता मानो वह राक्षस एक भूत की तरह हर घड़ी उसका पीछा कर रहा है। बाख्तीगुल उसकी ओर देखता हुआ प्रार्थना करने लगता.

"हे भगवान, मेरी रक्षा करो .. मुझे शक्ति दो!"

दुश्मन उसका डटकर और लगातार पीछा कर रहा था, ठीक वैसे ही जैसे एक लोक-कथा मे चुड़ैल वावा-यागा एक कूबड़ और तेज चालवाले ऊंट पर सवार होकर दिलेर शिकारी कुलामेर्गेन का पीछा करती है। भगोड़े को कभी-कभी यह सपना आता कि दावानल उसके पीछे-पीछे एक दीवार की तरह बढ़ता आ रहा है या बाढ की बैंगनी-सी जीभ उसकी ओर लपक रही है। तब वह या तो पसीने से तर-ब-तर या फिर झुरझुरी महसूस करता हुआ जागता। कभी-कभी जागते हुए भी उसे ऐसी अनुभूति होती। ऐसे क्षण भी आते, जब वह स्वप्न और जागरण की स्थिति में अन्तर न कर पाता और भूत-प्रेत से अपनी रक्षा करने, उन्हे दूर भगाने के लिए क़मीज के अन्दर थूकता।

कभी-कभी ऐसा भी हुआ कि घोड़ा उसे लगभग बेहोशी की हालत मे पीछा करनेवालों से बचा कर दूर ले जाता। इतना ही गनीमत कहिये कि बेहोशी मे भी वह घोड़े से नीचे न गिरता। होश आने पर वह किस्मत का शुक्रगुज़ार होता, जिसने उसे ऐसा अच्छा घोड़ा, ऐसा बढ़िया दोस्त दिया था। वह झल्लाकर बुदबुदाता:

"उनके हत्थे नही चढूंगा... जीते जी ऐसा नही होने दूगा... जीन पर ही मर जाऊगा... ख़ुदा को अपनी जान दे दूगा, बाई को नही... खड्ड मे गिर कर मर जाना जेल मे सडने से बेहतर है..."

लेकिन घोर निराशा अधिकाधिक उसका गला दबोच लेती। वह फदे मे बुरी तरह कसे हुए घोड़े की तरह गले से खरखराहट की आवाज निकालता। देर-सवेर ये लालची, ये कमीने उसे पकड़ लेगे, उसे बेडियां पहना देंगे। वह मरना नही चाहता था। उसकी नसों, उसके थके-हारे शरीर मे गर्म खून तेजी से दौरा करता रहता। छोटे-से और बुझते हुए अलाव के सामने उकडूं बैठा हुआ वह चट्टानों की ओर ऐसे ही सिर उठाकर देखता, जैसे पाले की चांदनी रात में भेड़िया करता है और कहता:

"ए जारासबाई, हद से आगे नही बढ़ो..." उसके ये शब्द संवेदनशील प्रतिध्वनि के रूप मे चट्टानों में गूज उठते।

जारासबाई को इस बात का शक हुआ कि गरीब गावों मे भगोड़े की मदद की जाती है, कि वहां के लोग उसे पनाह देते हैं, खिलाते-पिलाते हैं। उसने सभी जगह यह भयानक खबर पहुचाने के लिए अपने हरकारे भेज दिये:

"जब तक हमारे बीच भगोड़ा फिरता है, हममें से किसी को चैन नहीं मिलेगा। किसी भी क्षण नगर से पुलिसवालों का दस्ता आ जायेगा... समझ लो कि तब सभी की शामत आ जायेगी। कानून भंग करनेवाले एक व्यक्ति के कारण दसियों, सैकड़ों निर्दोषों को मुसीबत का सामना करना होगा...

तब बड़े-बूढ़े शिकवा-शिकायत करेंगे, बीवियां और बच्चे टसुए बहायेंगे, पर तब यह सब कुछ बेकार होगा!"

इसके साथ ही जारासवाई ने विश्वसनीय लोगो को प्रभावशाली बुजुर्गों के पास भेजा और यह कहलवाया कि वे हाथ पर हाथ धर कर न बैठे रहें। चालाक जारासवाई ने दिलेरो और डरपोकों, दयालुओ और निष्ठुरों के दिल में दहशत पैदा कर दी। आकाश मे बाज और धरती पर शिकारी कुत्ते छोड़ दिये गये।

एकबारगी वाख़्तीगुल से छिपने की जगह और पेट भरने का गुप्त आसरा छिन गया। एक सप्ताह भी नही बीता कि उसने अपने को ऐसे घिरा हुआ पाया मानो खूनी कुत्तों के घेरे मे भालू। पहाड़ो तक पर भी भरोसा नही किया जा सकता था। उसके कानो तक यह ख़बर पहुच गई कि मक्कार जारासवाई ने लोगो मे कैसे दहशत पैदा कर दी है। यह आज़माया हुआ तरीका था... अब किसी आदमी पर भरोसा नहीं किया जा सकता–एक दुत्कार कर भगा देगा तो दूसरा ख़ुद कन्नी काट कर भाग जायेगा, तीसरा विश्वासघात करेगा या फिर डर से हत्या कर डालेगा।

बेहद थके-हारे वाख़्तीगुल ने आख़िरी बार एक बरसाती रात लोगो के साथ बितायी। एक छोटे-से पहाड़ी गांव मे एक ख़स्ताहाल और अलग-थलग खेमे में उसने पनाह ली। यह खेमा एक बढी हुई चट्टान के नीचे उस जगह पर था, जहां से फेन उगलती हुई तेज रफ़्तार वाली नदी ताल्गार बाहर निकलती थी।

इस खेमे मे पहुंचते ही उसे लगा कि वहां पहलेवाली बात नही है, कुछ गड़वड झाला है, उसके साथ पहले जैसा वर्ताव नही किया जा रहा। घर वालों ने उसे देखकर नाक-भौह सिकोडी, उससे आख नही मिलाई, मानो उसके साथ साथ घर मे साप घुस आया हो। रात को देर तक उसे घर वालों की दबी-घुटी और चिन्ता भरी खुसुर-फुसुर सुनाई देती रही मानो वे उस खुसुर-फुसुर को भी उससे छिपाना चाहते हों। जब उनकी खुसुर-फुसुर ख़त्म हो गई तो भी उसकी आख नही लगी। उसने घंटे भर के लिए झपकी ली, थकान मे दुखती हुई पीठ सीधी की और पौ फटने से बहुत पहले ही दबे पावो बाहर आ गया। घर वालों को उसकी आहट तक न मिली। उसने खड़े-खड़े ही गहरी नीद सो रहे मुश्की घोड़े पर जीन कसा और इस बात की अच्छी तरह जाच-पड़ताल कर कि कोई उसे देख तो नही रहा, वहा से चल दिया। वह लज्जित और दुखी होता हुआ, लेकिन मन में किसी तरह के रोष के बिना वहा से रवाना हुआ। यह भी ख़ुदा का शुक्र है कि उसके रास्ते मे किसी तरह के रोड़े नही अटकाये जा रहे थे।

वुर्गेन में बाख़्तीगुल का एक दोस्त था, एक रूसी देहाती, जिसने जीवन के सभी उतार-चढाव देखे थे। यह बडा ही दिलेर आदमी था। तीन साल पहले धावे के समय वे संयोग से इकट्ठे हो गये थे। बाख़्तीगुल उस समय साल्मेन के यहां काम करता था। उन दोनों के बीच गहरी दोस्ती हो गई। इस देहाती की दिलेरी की तो मिसाल ढूंढना भी कठिन था।

उसने नगर के बड़े अफ़सरों से मोर्चा लिया। बेशक वह उनका अपना रूसी ही था, फिर भी अफसरो ने उसे जेल में डाल दिया। यह देहाती साल भर जेल मे पडा रहा। इसी समय वाख़्तीगुल से जितना बन पडा, उसने बहुत-से बच्चोंवाले उसके परिवार को अनाज और मास देकर मदद की। जेल में बुरी तरह सताया हुआ देहाती वापिस आया। पर वह जेल के जीवन की बाते ऐसे हंस हंसकर सुनाता कि वाख़्तीगुल के रोंगटे खडे हो जाते। काज़ियों के मुक़दमे और बीवी-बच्चों से विदा लेने के बाद वाख़्तीगुल सबसे पहले उसी के पास पहुचा। उसने किसी तरह की फालतू बातचीत किये बिना जरूरत के वक़्त के लिए ज़मीन मे दबाया हुआ बारूद और गोलिया निकाल कर उसे दी।

यह था असली दोस्त। पुलिसवालों से उसे डराना मुमकिन नही। मगर वह बहुत दूर, खुली स्तेपी मे और घनी आबादीवाली जगह पर रहता था।

वाख़्तीगुल के लिए सिर छिपाने की एक और जगह भी थी। यह जगह थी ताल्गार के निचले भाग में, लाल चट्टानों के पास, ग़रीब काट्बाई के घर मे। दूसरों की तुलना में वाख़्तीगुल इस घर मे कही अक्सर आता था और यहां उसे हमेशा पनाह मिलती थी। अपने घर से नाता टूटने के बाद काट्बाई का घर उसके लिए सबसे अधिक अपना और प्यारा हो गया था। वाख़्तीगुल ने उस घर मे झांकने, अगर मिल जाये तो चाय पीकर तन गर्माने, मगर कोई बता दे इर्दगिर्द की अफवाहें सुनने और घोड़े को सूखे

मौज मनाने की सुविधा देने की जोखिम उठाने का निर्णय किया। उसने सोचा कि झुटपुटा हो जाने पर मैं पहाड़ों में चला जाऊंगा।

वाख़्तीगुल खड़ी ढाल पर छाये हुए चीड़ के जंगल के छोर पर पहुचा और उसने सावधानी से इधर-उधर नजर दौड़ाई। नीचे उद्धत-उद्दड तालगार नदी अपने भयानक शोर से सारी घाटी को सिर पर उठाये हुए थी। काट्वाई के घर के आसपास और आंगन में कोई अजनबी नजर नही आ रहा था, जीन कसे हुए घोडे दिखाई नहीं दे रहे थे। वाख़्तीगुल धीरे से फाटक पर पहुंचा, घोडे से उतरा, उसे बाधा और घर के अन्दर गया।

काट्वाई के परिवार मे कुल चार जने थे—वह खुद, उसकी बीवी और दो बच्चे। वह अपने वंश के लोगों और रिश्तेदारों से, जो साल भर जहा-तहा घूमते रहते थे, अलग और एक ही जगह टिककर रहता था। उनके साथ उसकी कभी-कभार और संयोगवश ही मुलाक़ात होती और तब भी वे एक-दूसरे मे ख़ास दिलचस्पी न लेते। काट्वाई गर्मी मे अनाज उगाता और जाडे में ढोरों की देखभाल करता। उसके पास एक घोड़ा और कुछ बकरे तथा मेमने थे। बस, इतने से ही वह अपना काम चलाता। शिकार करके भी कुछ ख़ुराक जुटा लेता। वह छोटे जानवरों के लिए बड़ी दक्षता से फदे और जाल लगाता और बड़े जानवरों को गोली से मारता। काट्वाई को शिकार का बेहद शौक हो गया था। वाख़्तीगुल उसे कीमती कारतूसों का साझीदार बनाता और

वह खुद भी ऐसे जानवरों के शिकार का शौकीन था जिनके पद-चिह्न अन्य शिकारी खोज तक नही पाते थे। उसे दूर से एक ही गोली मारकर जानवर को बींध डालना अच्छा लगता था। इसी लिए इन दोनों के बीच गहरी छनने लगी थी।

वाङ्तीगुल ने इस समय पूरे परिवार को घर में पाया। काट्वाई बन्दूक़ साफ कर रहा था, उसकी बीवी हिरन का मांस भून रही थी और बच्चे मांस की दावत उड़ाने का इन्तज़ार करते हुए चूल्हे के क़रीब सटे हुए थे। अंगीठी पर मनपसन्द चाय उबल रही थी।

काट्वाई पचास से अधिक उम्र का था। उसकी छोटी-सी दाढ़ी में सफेदी आ गई थी, मगर गाल लाल-लाल थे, जवानों की तरह। वह नम्र और दयालु तथा प्यारा-सा व्यक्ति था। उसकी बीवी भी सुघड़ थी, गदरायी हुई, गोरे चेहरे और लाल लाल गालोंवाली। उसका चेहरा और शरीर के अग बड़े-बड़े थे और वह मर्दों से अधिक मिलती-जुलती थी, पर हद दर्जे की भोली-भाली, बालिका या दयालु बुढ़िया के समान थी। सच तो यह है कि उन दोनों के पूर्वजों की आत्माओं ने उन्हें सौभाग्यशाली बनाने के लिये ही मिलाया था! बच्चे भी बिल्कुल मां-बाप के ही रूप थे। दोनों लड़के विनम्र, साफ़-सुथरे, हसमुख और सन्तोषी थे।

फौरन चाय से उसका सत्कार किया गया। इसके बाद उसके लिए मास परोसा गया। ज़ाहिर है कि भगोड़े को रात बिताने के लिए भी कहा गया... वाङ्तीगुल के तन

में गर्मी आ गयी थी, उसका पेट भर गया था। उसने बिल्कुल वैसे ही अनुभव किया, जैसे कि अपने घर में, अपने परिवार में। वाह्तीगुल का पीड़ित एकाकी हृदय द्रवित हो उठा, कसक उठा। वह अहाते में खड़े हुए अपने घोड़े के पास गया, जो रात की ख़ामोशी में चैन से सूखी घास चर रहा था। उसने घोडे की गर्दन में बाहें डाल दी और टीसते हृदय से अपनी सख़्त मूंछ को बेचैनी से चबाता हुआ देर तक ऐसे ही खडा रहा।

काटुबाई और उसकी बीवी वाह्तीगुल के बारे में वही कुछ जानते थे जो कुछ उसने बताया था। इससे अधिक उन्हें कुछ मालूम नही था। काटुबाई लोगो के घर नही जाता था, ज़रूरत और काम-काज के बिना गांवों में इधर-उधर नहीं घूमता था, अफवाहों के फेर में नही पड़ता था और चुगलियो के बिना नही ऊबता था। ज़ाहिर है कि दीन-दुनिया से अनजान इस दयालु को पता भी नही था कि इस भगोड़े चोर की वह कितनी अधिक मदद करता है और उसे अपने घर में छिपाकर कितनी बड़ी जोखिम उठाता है। क्या इसी लिए तो काटुबाई इतना निश्चित नही था? अनजान को भला दोष ही क्या दिया जा सकता है?

वाह्तीगुल ने काटुबाई के घर में पतझर की कई ठंडी रातें बिताईं। वह अंधेरा होने पर ही आता-जाता, ताकि अनचाहे भी मेहरबान लोगों के मत्थे न लग जाये। ताज़ादम होकर जाता और कभी ख़ाली हाथ न आता, किसी न किसी जगली जानवर को मार लाता।

"हम तुम्हारी नही, बल्कि तुम हमारी मदद करते हो," रात को देर से खाना खाते हुए काटुवाई अक्सर कहता। "यह भी कह देना चाहता हूं कि अकेले का खुदा रखवाला होता है।"

और बाख़्तीगुल ने सोचा कि अगर इस व्यक्ति को मजबूर होकर मुझे पुलिस के हवाले करना पड़े... तो बेशक ऐसा कर दे।

एक दिन सुबह को काटुवाई ने चिन्तित होते हुए कहा: "सुनने में आया है कि हमारे इलाके में मानो कोई खतरनाक, कोई बहुत बुरा आदमी फिरता है। आदमी नही—शैतान है... हल्क़ेदार ने सभी से यह कहा है कि जिस किसी के दिल में ख़ुदा का डर है, वह इस दुष्ट को पकड़ कर उसके हवाले कर दे। हाल ही मे नीचेवाले गाव मे घुड़सवारों का पूरा टोला ही उसकी खोज करने आया था..." और काटुबाई ने जरा हंस कर अपनी बात ख़त्म करते हुए कहा: "बेटे, कही तुम ही तो नही हो वह शैतान?"

बाख़्तीगुल समझ गया कि अब यहां से चलने का वक़्त आ गया।

उसने उसी समय घोड़े पर जीन कसा और ताल्गार नदी के किनारे-किनारे चल दिया।

दूरी पर सफ़ेद फेन उगलती हुई नदी की खरखरी और घुटी-घुटी आवाज सुनाई दे रही थी। निकट आने पर उसका बर्फ जैसा ठडा और झाग उगलता पानी दहशत पैदा करता था। इस नदी से झुरझुरी पैदा करनेवाली ठड की अनुभूति होती

और बहुत ही तेज धाराओं मे गुंथा हुआ इसका हरा पानी बहुत ही जोर-शोर से बह रहा था। बरबस आदमी किनारे से हट जाता, पर फिर भी पानी पर उसकी नजर टिकी ही रहती। ऐसे प्रतीत होता मानो असंख्य अजगर लहरिये बनाते, अपनी मोटी-मोटी पीठो को ऊपर उठाते, एक-दूसरे को कसते और एक-दूसरे का गला घोंटते तथा वर्फ की तरह सफ़ेद झाग उगलते जा रहे है। ऐसे लगता मानो वे लहरे नही, हजारों जंगली जानवर हैं, जो कानों के पर्दे फाड़नेवाला शोर करते और बेहद डरे हुए नदी की धारा के साथ ताबड़-तोड़ भागते चले जा रहे हैं और उनकी पीठें एक-दूसरी के ऊपर चढ़ती-उतरती जा रही हैं।

वाख़्तीगुल ने एक बड़े उभाड़ के ऊपर तंग और अंधेरी घाटी मे अपने घोडे को रोक लिया और नदी की ओर ध्यान से देखा मानो उन्मादी पानी के उन्माद का अनुमान लगाने की कोशिश की। गर्मी में तो तालगार में बहुत ही पानी होता है, मगर इस समय, पतझर के अन्त में भी वह छिछली नहीं थी और बेकार ही उछल-कूद करती हुई शोर मचा रही थी। इस जगह यह नदी खिची हुई कमान की तरह लग रही थी। ऊंचाई पर पानी की धाराएं अतिकाय चट्टानों के नीचे मे वह रही थी, मानो ग्रानिट की नाक या पाषाणी राक्षस के गले से निकलकर आ रही हों और नीचे दूसरी चट्टान के पास आकर मानो अतल गर्त मे पूरी तरह विलीन हो गई थी। ऐसे लगता था मानो एक पर्वत दूसरे पर्वत की प्यास बुझा रहा हो, किन्तु उसे तृप्त न कर पाता हो।

बाख्तीगुल मोड लाघकर अधिक ढालू स्थान पर, एक छोटी और खुली घाटी में पहुच गया। यहा नदी अधिक चौड़ी और कम गहरी हो गई थी, पर इस जगह इसे पार करने की बात सोचना भी वहुत भयानक था। चपटी, चिकनी और एक-दूसरी के पीछे भागती तथा ऊंचा और मोटा-मोटा और निश्चल फेन उगलती लहरों को देखकर सिर चकराने लगता था।

"पुल तो नीचेवाले गांव में है," बाख़्तीगुल ने सोचा। "ऐसे नदी पार नही की जा सकेगी..."

इसी समय उसके घोड़े ने सिर झटका और कान खड़े किये। बाख़्तीगुल ने उधर देखा जिधर घोड़े की नज़र थी और उसका दिल वैंठ गया।

तट से लगभग आध मील की दूरी पर एक नगी चट्टान के पीछे से दो घुड़सवार सामने आये। वे साधारण लोग नहीं थे, अपने कुरते की केवल बायी आस्तीन ही पहने थे, हाथों मे सोटे लिये हुए थे। उनके घोड़े खूब मोटे-ताज़े और ताजादम थे।

बाख़्तीगुल ने जल्दी से इधर-उधर नज़र दौड़ाई और उसे अपने पीछेवाली ढाल पर चार घुड़सवार और दिखाई दिये। उनमें से एक सम्भवतः बन्दूक लिये हुए था।

तो यह किस्सा है। लगता है कि मुझे घेरे में ले लिया गया है। मैं पहाड़ी फंदे में फंस गया हूं। सफ़ेद फेन वाली और शोर मचाती हुई तालार नदी उसके रास्ते में बाधा

बनकर खड़ी थी, वह उसे वीरान और अगम्य स्थानों से अलग किये हुई थी।

छिपने की जगह कही नही थी। घेरा तोड़ा जाये? इसमे कामयाबी नही मिलेगी। ये लोग मेरा कोई लिहाज नही करेगे। मुझे बच निकलता देखेगे तो गोली ही मार देंगे।

सोच-विचार करने का भी समय नही था। घुड़सवारों की उस पर नजर पड़ गई और वे भयानक रूप से मुह फाड़कर चिल्लाते, सोटे हिलाते और सरपट घोडे दौडाते हुए उसकी ओर बढ चले। आगे-आगे तीन थे और उनके पीछे छः या सात और भी, जिन्हें गिनने का उसके पास वक्त नही था। सीटी की लम्बी-ऊंची आवाज मे तालगार का शोर दब गया।

अब तो केवल एक ही रास्ता था, एक ही उम्मीद बाकी रह गई थी...

बास्तीगुल ने सोचे-विचारे बिना बन्दूक को पीठ पर कस लिया, छाती पर बधे कारतूसों के चिकने चमडे वाले थैले को छुआ और छः गोलियोंवाली पिस्तौल को जेब मे डाल लिया। उसने उड़ती-सी नजर से तट पर ऐसी जगह चुन ली, जहा उसे पानी कुछ छिछला प्रतीत हुआ और घोडे पर चाबुक सटकार कर उसे पानी की ओर बढ़ा दिया।

घोडा बढ़ चला। उसने सिर ऐसे झुका लिया मानो पानी पीने वाला हो और धीरे-धीरे तथा सावधानी से बर्फीले फेन मे आगे जाने लगा।

तट के करीब पानी घोडे के घुटनों तक था। इसके आगे वह गहरा हो गया, पानी ने उसे पेट के बल ऊपर उठा

लिया, धकेला, एक बगल पेला और बहा ले चला। अब तट, पहाड़ और आकाश – सभी कुछ उलट-पलट गया और धमाके के साथ बाख़्तीगुल की आंखों के सामने मानो एक विराट काले-काले और हरे हिंडोले की भांति घूमने लगा।

"ओ ख़ुदा बचाओ... बुज़ुर्गों की रूहो मदद करो," घोड़े की पीठ पर लेटा हुआ बाख़्तीगुल प्रार्थना करने लगा।

ज़ोरदार और मज़बूत धारायें बाख़्तीगुल और घोड़े को तेजी से अपने साथ बहाती हुई कभी उन्हें ऊपर को उठातीं, कभी नीचे गिरातीं। पानी बाख़्तीगुल को सिर से पैर तक थपेड़े मार रहा था, धुन रहा था, कूट-पीट रहा था। लगता था मानो उस पर हज़ारों सोटे और मूसल बरस रहे हों जो उसे घोड़े से अलग करना चाहते हों। मगर वह अपना पूरा ज़ोर लगाकर घोड़े के साथ चिपका हुआ था और स्पष्टतः यह अनुभव कर रहा था कि उसके नीचे घोड़ा अपनी पूरी ताक़त से संघर्ष कर रहा है, कि जलगत पत्थरों से वह कितनी ज़ोरदार चोटें खा रहा है, उसके अंग भंग हो रहे हैं, मगर वह जूझता जा रहा है, हिम्मत न हारकर घुड़सवार को बचा रहा है। जैसे ही घोड़े ने हिम्मत हारी कि खेल ख़त्म! घोड़े की टांगें और छाती तो सही-सलामत है न? दायां तट कहां और बायां कहां है? कुछ भी तो समझ में नहीं आता... बाख़्तीगुल के सामने पानी के लालची हरे मुंह खुले हुए थे और वह अन्धाधुंध उनकी ओर तेज़ी से बढ़ा जा रहा था और अच्छी तरह यह समझ रहा था कि वह मौत के मुंह में जा रहा है। अपनी आख़िरी पूरी कोशिश

करते हुए उसे अपने बचने की कोई उम्मीद नजर नही आ रही थी।

घडी भर के लिए घोड़े को पेट के बल पानी से ऊपर उठाया गया और वाख़्तीगुल को अचानक अपने सामने भीगी हुई काली चट्टान दिखाई दी। "बस...अब सब कुछ ख़त्म!" उसके दिमाग मे यह विचार कौंधा। एक क्षण बाद वे इस चट्टान से टकरा जायेंगे, टुकडे-टुकड़े होकर अलग-अलग दिशाओं मे बिखर जायेंगे... मगर ऐसा कुछ नही हुआ। यह तो मानो करिश्मा ही हुआ कि घोड़ा काली चट्टान के क़रीब जाकर रुक गया और यहा तक कि पैरो पर खड़ा हो गया। वाख्तीगुल ने इधर-उधर देखा, खासकर गला साफ किया और थूका। खुदा का शुक्र है! तीन-चार क़दम की दूरी पर ही तट था...

पर इसी समय उसने अनुभव किया कि घोड़ा चिकनी चट्टान से नीचे फिसलने लगा है। पानी उसे बहाये लिये जा रहा है! घोडे ने अपने पीले दांत दिखाते हुए खरखरी-सी आवाज निकाली और अपनी जलती हुई नजर घुमाकर देखा। बस यह डूबा कि डूबा। वाख़्तीगुल कुछ भी न समझते हुए एक उन्मादी की तरह कुछ चीख उठा। शायद उसने कहा: "अलविदा" अथवा शायद "माफ करना"। फिर वह घोड़े की पीठ पर खड़ा हो गया, उसने कानों के बीच उसके सिर पर पैर रखा और अपनी पूरी ताक़त से, हताशा जनित शक्ति से तट की ओर छलांग लगाई।

पानी डंडे की तरह उसके पैर पर लगा और उसने सोचा : "बस, अब खेल खत्म!"

होश आने पर उसने अपने को तटवर्ती पत्थरों पर मुंह के बल लहूलुहान पड़े पाया। उसके कपड़े तार-तार हो गये थे और वह दर्द और ठंड से कांप रहा था। सबसे पहले उसे अपने घोड़े का ध्यान आया। वाक़्तीगुल ने कराहकर सिर ऊपर उठाया, मगर आंखों में छाई हुई लाल धुंध के कारण उसे कुछ भी दिखाई नही दिया।

दायां पहलू और जांघ ऐसे घायल थी मानो दरिन्दों ने अपने पंजों से उन्हें नोच डाला हो। सारे जिस्म पर खरोंचें थीं, नील पड़े हुए थे। मगर हड्डियां और सिर सही-सलामत थे। बन्दूक और कारतूसोंवाला थैला बच गया था, केवल छः गोलियोंवाली पिस्तौल जेब के साथ ही वह गई थी।

अंधा और दर्द से कराहता हुआ वाक़्तीगुल तट की ओर ऊपर रेंगा। जब ख़ूनी धुंध उसकी आंखों के सामने से हटी तो उसने एक पागल की तरह ताल्यार को घूरा। अगर उसमें ताकत बची होती तो वह दर्द से हाय-वाय करने लगता। घोड़ा कहीं नज़र नहीं आया। चाबुक तो मानो वाक़्तीगुल का मज़ाक़ उड़ाता हुआ उसके हाथ के साथ लटक रहा था।

"हां, तो ज़मीन पर ही मरना नही लिखा था किस्मत में... घोड़ा नही रहा! वह पीले दांतों वाला निडर दोस्त अब वहां चला गया था, जहां से कोई लौटकर नहीं आता..."

वाक़्तीगुल ने नफरत से दांत पीसते हुए दूसरे किनारे की ओर देखा।

बेचैनी से उछलते-कूदते घोड़ों पर कोई डेढ़ दर्जन घुड़सवार इधर-उधर हिल-डुल रहे थे। वे धारा से काफ़ी दूर थे, पानी के निकट नहीं आ रहे थे। जो दृश्य उन्होंने देखा था, उससे सवार और घोड़े डर-सहम गये थे। शैतान ताल्गार को पार कर ही गया!

तब वाख्तीगुल ने अपना घायल घूसा ताना और उसे धीरे-से हिलाते हुए फटी-सी आवाज में कहा:

"जरा सब्र कर, मैं तुझे मजा चखाऊंगा, नेक और उदार वाई..."

६

वाख्तीगुल कराश-कराश घाटी के ऊपर कठोर और निर्जन प्रदेश में घूमता रहता। रात को वह चीड़ के जंगलों में छिप जाता, कांटेदार झाड़ियों के बीच पथरीले गड्ढे में छोटी-छोटी लपटोंवाला धुएंदार अलाव जला लेता ताकि पतली-सी चाय अथवा कोई अन्य साधारण-सी चीज उबाल ले। सूर्योदय होते ही वह दर्रे के उस मटमैले मार्ग पर चला जाता जो बल खाता हुआ वीरान-सुनसान पहाड़ों में से गुजरता था।

वाख्तीगुल अपनी सूजी हुई आंखों को सिकोड़कर दिन भर इसी मार्ग पर नजर जमाये रहता, अपनी काली मूछों को चबाता रहता। कभी-कभी वह नीचे इस मार्ग पर उतर आता, आगे-पीछे टहलता और इधर-उधर देखता रहता मानो कुछ खोज रहा हो। कभी-कभी उकड़ूं बैठ जाता, कभी एक

जगह और कभी दूसरी जगह पेट के बल लेट जाता, बहुत ही उदासी-भरे विचारों में उलझा-खोया-सा और अपने-आप से ही अस्पष्ट-सा कुछ बुदबुदाता रहता। वह पक्षी की भांति एक आंख मूदकर मानो आख मारते हुए इस मार्ग को टक-टकी बाधकर देखता जाता, देखता जाता।

बाख्तीगुल का चेहरा पीला पड गया था, गालों पर बिल्कुल लाली न रह गई थी। उसे लगता था मानो उसके शरीर मे जिदगी के सभी रस सूख चुके हैं। उसके हाथ कापते और हिलते-डुलते रहते मानो वह अपनी उंगलियो से किसी अदृश्य चीज को दबाता और पीसता रहता। उसकी सास बेचैनी से चलती और वह अपनी सारी आत्मा को उंडेलता हुआ कभी गहरी सास लेता और कभी परेशान होता हुआ खरखरी आवाज में खांसता रहता।

बेक़रारी उसे परेशान करती रहती। उसके सूजे और मानो बुख़ार के कारण तपते होंठों पर झुकी हुई लम्बी मूंछें कभी-कभी उस बाज के पंखों जैसी प्रतीत होती, जो किसी लाल लोमड़ी को बर्फ में दबोच लेता है।

दिन बीतते गये और बाख्तीगुल हर दिन ऊंचाई से नीचे आकर घाटी मे से होता हुआ इस मार्ग की ओर जाता। उसे जीभर कर देखने के बाद वह आकाश को छूती हुई पहाड़ी चरागाह की ओर देखता जिसका रंग पतझर मे फीका पड़ चुका था और जहा समय से पहले गिरी हुई बर्फ के धब्बे नजर आते थे। इसके बाद वह ऊंचे असी पर्वत की ओर लाल-

लाल आखों से देखता। और वर्फ की चमक के कारण चकाचौंध होकर उन्हे सिकोड़ लेता। उस समय यह समझ मे न आता कि उसकी आखों मे आंसू भरे हैं अथवा उनमें गुस्से की आग चमक रही है।

ख़ुदा इस बात का गवाह है कि वह ऐसा नही चाहता था जो उसने करने की ठान ली थी, ठीक वैसे ही जैसे उसने पहले नेकनाम धावों में हिस्सा नही लेना चाहता था और न ही बदनामी वाली घुड़चोरी में। इसी लिए उसने कुछ भी सोचे-समझे बिना मौत को गले लगाया और तालगार नदी मे कूद गया। उसकी किस्मत में तो मानो नया जन्म लेना लिखा था। ऐसा ही समझना चाहिए कि अभी उसने जिन्दगी के प्याले को पूरी तरह नही पिया था। वह जीवन की आखिरी बूंद यहा कराश-कराश में पीने की तैयारी कर रहा था!

कराश-कराश – यह वास्तव मे नगी चट्टानोंवाली तीन पर्वतमालाये थीं। इनके गिर्द चीड़ और फर के जंगल थे। ये पर्वतमालायें थी – मुख्य कराश, मध्यम कराश और निम्न कराश... काले पर्वत, ग्रावनूसी चट्टानें और शाश्वत रूप से काले जंगल... यहां दर्रा बहुत ऊंचाई पर और दुर्गम था और इर्दगिर्द के इलाके में केवल एक ही। गर्मियों मे यहा से धीरे-धीरे चलता हुआ एक के बाद एक कराबां बुर्गन और चेल्कार की ओर जाता। यहीं से होकर मिमियाती भेड़ों और हिनहिनाते घोड़ो के रेवड़ के रेवड़ आकर्षक पहाड़ी चरागाहों की ओर धारा प्रवाह बढ़ते जाते। अब बरखा-पानी

की पतझर में, बर्फीले तूफान और वर्फ के तूदो के समय कोई एकाध राहगीर ही दर्रे को जल्दी-जल्दी पार करता है अपने घोडे को टिटकारता और इधर-उधर भय से देखता है कि कही कोई भेडिया तो आसपास नही है जो ढोरों के साथ-साथ ही मैदानों मे उतर आते हैं।

केवल बाल्तीगुल ही यहां से नहीं जाता था। वह जानता था कि यही उसे अपनी क़िस्मत को आजमाना होगा। वह पथ की ओर देखता हुआ उचित मौके की प्रतीक्षा करता रहता।

उसने अपने लिए मध्यम कराश पर्वतमाला चुनी। उसने इसे अच्छी तरह छान मारा, सभी ओर घूमा, हर दरार और हर मोड़ को देखा-भाला, कुत्ते की तरह पहाड़ों की गन्ध ली और उसके हर कोने को उसी तरह याद कर लिया जैसे मुल्ला अपनी धार्मिक पुस्तक को रट लेता है। वह ऐसी जगह की तलाश करता रहा जहा से ऐसे निकल आये मानो ज़मीन मे से निकला हो और फिर उसी क्षण ज़मीन में समा भी जाये। उसने ऐसी जगह खोज ली।

रास्ता पथरीली घाटी की ढाल पर से जा रहा था और राहगीर को बड़े चौड़े अर्ध-चक्र के गिर्द होकर जाना पड़ता था और बहुत दूरी से ही उसकी झलक मिल जाती थी। दर्रे के और क़रीव यह मार्ग दीवार की तरह खड़ी चट्टानों के साथ-साथ गहरी घाटी के किनारे-किनारे जाता था। यहां अगर कोई सामने से आ जाता तो केवल एक-दूसरे से सटकर ही लांघना सम्भव था। मार्ग के आमने-सामने गहरी घाटी के पार एक नुकीली चट्टान पर एक दूसरे से ऐसे सटे हुए मानो

एक ही जड़ से निकले हों, एस्प के तीन पुराने वृक्ष खड़े थे। एस्पों के बिल्कुल पीछे से सिर चकरा देनेवाली ढाल शुरू होती थी, जिस पर जहां-तहां उभरी हुई लाल चट्टानें बिखरी थी जिन पर बकरे ही खड़े रह सकते थे। इस ढाल के दामन में घना-काला जंगल था जहां प्यादा और घुड़सवार भी आसानी से छिप सकता था।

बाख्तीगुल पौ फटने के साथ यहां आकर ऊंचाई पर उगे एस्प के इन वृक्षों के धुंधले रुपहले तनों को देर तक अपने खुरदरे और ठंड से अकड़े हाथों से बड़े प्यार से सहलाता रहता।

वह जिस दुनिया में रह रहा था उसे बहुत खिन्न मन से देखता था। पतझर के आकाश पर धुंधली और मैली-सी चादर छाई रहती। दूरी पर स्थित हिम-मंडित चोटियों को बादलों की पगड़ी ढके रहती। पर्वतों के पाषाणी चेहरे पर उदास-सी परछाइयां पड़ती और दोपहर के समय भी पर्वतमालायें और उनकी चोटियां मानो नाक-भौंह सिकोड़े रहतीं, अपनी झबरीली भौंहों पर ऐसे बल डाले होतीं जैसे कि वे किसी कारणवश नाखुश हों। चारों ओर क़ब्र की सी खामोशी छाई रहती। नीले बादलों को चीर कर निकल आनेवाली उषा के प्रकाश में एस्प वृक्षों के सामनेवाला मार्ग गहरा लाल-बैंगनी हो जाता, फूला-फूला और रक्त-रंजित सा लगता। इर्दगिर्द की चट्टानों पर लाल धब्बे चमकने लगते।

"अगर ऐसा ही होना बदा है, तो होने दो..." वाख़्तीगुल फुसफुसाया और उसने अपनी मूछें चबायी।

दिन जब साफ होता तो वह दर्रे के ऊपर चला जाता कि खुल कर सास ले सके, कि दिल पर पड़े हुए बोझ को हल्का कर पाये।

बड़ी दूरी पर धूप नहायी दक्षिणी दिशा में चीड़ वृक्षों का सारीमसावत जंगल दिखाई देता था। यहा से वह कत्थई रंग के एक अतिकाय घोडे के पुट्ठे के समान लगता था। जगली लहसुन की तरह तेज़ गधवाले इस जगल मे वाख़्तीगुल अपने भूतपूर्व मालिक के झुड से चुरायी हुई घोड़ी के साथ छिपा था और उस समय उसे इतनी भूख लगी थी कि राल की गन्ध से उसे मतली-सी होने लगी थी... यह केवल एक वर्ष पहले की बात थी! यह उसके जीवन का वह अन्तिम वर्ष था जो शुरू मे परेशानी की हद तक आरामदेह, असामान्य रूप से भरा-पूरा प्रतीत हुआ था।

दूसरी ओर दर्रे की ठण्डी हवाओ से रक्षा करनेवाली नाजार पर्वतमाला खड़ी थी। उसका नीला-सा चितकबरा कूबड़ पसीने से काले हुए खेत-मजदूर के हाथ की नसों की भाति उभरा हुआ था। इस पर्वतमाला पर भी एक-दूसरे के साथ सटे हुए युगो पुराने चीड के पीले-लाल और फर के काले-हरे वृक्ष सिर उठाये खडे थे। कही-कहीं उनके शिखर पहाड़ी चोटियो की ओर जा गिरे थे और पाषाण-वर्षा से छाल वंचित की गई उनकी शाखायें और उलझी-उलझायी विराटकाय जड़ोंवाले उनके तने प्राचीन सूरमा के समय बीतने के कारण

काले पड़े हुए पंजर जैसे लगते थे। यह पंजर तो जैसे पड़ा सड़ता रहता था और इसके नीचे कुछ भी नहीं उगता था।

पर्वतमाला और बादलों के ऊपर अछूती वर्फ से ढकी हुई ओजर की चोटी निरन्तर चमकती रहती थी। बूढ़ा सफेद सिर, मगर नाम ओज़र यानी दिलेर। रातों को भी वह आकाश को छूती हुई स्पष्ट रूप से रुपहली-रुपहली दिखाई देती रहती और कभी-कभी तो वाक़्तीगुल को ऐसे लगता मानो वह अपनी महती और अजेय आकृति से उसे अपनी भयानक चोटी की ओर बुलाती है जहां दया नाम की कोई चीज नहीं, जहा सब कठोर और निर्मम ही निर्मम है।

हा, बादलों के ऊपर दिखाई देनेवाला यह हिमानी शिखर वाक्तीगुल से सचमुच बातें करता, मानो उसका साथ देता और यह समझता था कि इस एकाकी और सभी से दुत्कारे हुए व्यक्ति के मन में क्या है जो अपनी प्यारी मातृभूमि पर रहने से हताश हो चुका है।

दिन गर्म था और हवा ने अपने पख समेट लिये थे। वाक़्तीगुल दर्रे के ऊपर खड़ा हुआ श्वेत ओज़र शिखर से मूक बातचीत कर रहा था कि अचानक किसी कारणवश उसने घूमकर देखा। वह सावधानी से चट्टान की ओट में हो गया और उसने चिन्ता से इधर-उधर नजर दौड़ाई... दूर मार्ग पर उसने मध्यम कराश की उदास दीवारों के नीचे एक घना और काला दल-सा देखा—वहा घुड़सवार थे।

वे असी पर्वत-की ओर से आ रहे थे और घाटी के घुप अंधेरे मे मानो डूबे-डूबे से, धीमे-धीमे बढ रहे थे।

वाख़्तीगुल धीरे से चीखा, झुका और सरसराती हुई ढाल को पार करते हुए तीन पुराने वृक्षों की ओर भाग चला।

वह दबे-दबे, हाफता हुआ और ठण्डे पसीने से तर-ब-तर सलेटी तनों के पीछे जा कर लेट गया। उसी क्षण उसने ओज़र की ओर देखा। चकाचौध करता हुआ सफ़ेद शिखर उसकी आखों में आंखे डालकर ऐसे देख रहा था मानो जशन मनाती हुई हज़ारो आंखें शरारत और उमंग से चमक रही हों।

वाख़्तीगुल ने अपने दिल पर हाथ रख लिया—वह तो मानो उछलकर बाहर आ जाना चाहता था। उसके कानो में घंटे-से बज रहे थे। उसने आखें सिकोड़कर नाज़ार जंगल की ओर देखा। उसे लगा मानो चुभती सुइयोंवाले फर वृक्ष अपनी जगह छोडकर दुर्ग पर धावा बोलनेवाली, आख़िरी हमला करनेवाली सेना के असंख्य दस्तों की भाति क़तार बाधकर कूबड़वाली पर्वतमाला पर लहरों की तरह ऊपर को भागे जा रहे हैं... मगर दूसरे ही क्षण उसे दूसरी अनुभूति हुई— उसे प्रतीत हुआ कि वहां, ऊंचाई पर सैनिक नही, फर और चीड़ के वृक्ष हैं और वे अपने शाखारूपी हाथों को लोगों की तरह फैलाये हुए उसके इरादे से डर कर सिर पर पैर रखकर भागे जा रहे हैं।

वाख़्तीगुल ने अपनी सूजी हुई शाखों पर हाथ फेरा और छाती के बल ज़मीन पर लेट गया कि उसका दिल कुछ शान्त

हो जाये। उसने पसीने से तर और यातना से विकृत अपना चेहरा ज़मीन पर टिका दिया। जमीन चुप्पी साधे थी और उस पर दूर से आती हुई घोड़ों की टापों की भारी और गम्भीर आवाज़ फैल रही थी।

वास्तीगुल ने एक बीमार की तरह अपना सिर बड़ी मुश्किल से ऊपर उठाया। एस्प वृक्षों के एकदम पास से ही नीचे की ओर बर्फ पिघलने के कारण भरे हुए नाले थे। वे झुर्रियों जैसे लगते थे और उन पर आंसुओं के निशानों के समान मटमैले फीते-से रिस रहे थे।

इस रास्ते पर तो हमारी मुठभेड़ होकर ही रहेगी! वास्तीगुल ने इतने जोर से दांत पीसे कि उन में दर्द होने लगा।

"जो होना है, सो हो," उसने धीरे से मानो मन्त्र पढ़ते हुए कहा और अपनी दायीं कोहनी के नीचे से बन्दूक की लम्बी नली सामने की ओर बढ़ाई।

नीली नीली जाली में मानो पारदर्शी रेशमी पर्दे के पीछे उसी मार्ग की पतली-सी कमान पर घुड़सवार दिखाई दिये— कोई पन्द्रह व्यक्ति!

ये न तो चरवाहे थे और न ही हरकारे, यादरजत लोग थे। इनके अधिकांश घोड़े तेज चालवाले थे, चुने हुए और खूबसूरत हल्के रंगोंवाले। घोड़ों के साज और जीन बढ़िया थे और दूर से हल्की-हल्की रुपहली झलक देते थे। धनी-मानी लोग इत्मीनान और निश्चिंत मन से चले आ रहे थे। मध्य में सब से अधिक मोटा-ताज़ा सवार था और आगे-पीछे

अपेक्षाकृत दुबले-पतले। वाख़्तीगुल को नारियों की भी झलक मिली जो ख़ूब सजी-धजी हुई थी, किसी बड़े पर्व के अनुरूप! काली चट्टानों की पृष्ठभूमि में फूले फुदनोंवाली उनकी शॉलो के इन्द्रधनुषी रग आखो को चकाचौंध कर रहे थे और उनकी बर्फ जैसी सफेद रेशमी फ्रॉकों के आंचल लहरा रहे थे। वे सभी लोग बहुत खुश थे, निश्चिंत और उमंग-तरग भरे। घाटी के पार से ख़ुशी भरी आवाजें और ठहाके सुनाई दे रहे थे। जहा रास्ता कुछ चौडा था, वहा वे दो-तीन एक साथ हो जाते थे और जहा सकरा होता वहा एक के बाद एक घोड़ा चलता था। घुडसवार एक-दूसरे को पुकारते थे, मुड-मुड़कर देखते थे, बातचीत करते थे और जीनों पर पीछे की ओर हटते हुए जोरों के ठहाके लगाते थे। ये ख़ानदानी, अमीर और हसते-चहकते लोगों का दल था!

आखें सिकोडे और होंठ काटता हुआ वाख़्तीगुल इन घुड़सवारो के बीच एक की खोज कर रहा था। वह उसे देख और पहचान कर धीरे-से कुनमुनाया! वह रहा वह चिकना-चिकना, रोबदार और दरियादिल। वह रहा वह गोरे और घमंडी चेहरेवाला। वह सफ़ेद अयालों और सफेद पूछ तथा सफ़ेद टखनोंवाले जाने-पहचाने सुनहरे-लाल घोड़े पर सवार था। घोडा तो जैसे मक्खन मला हुआ था, उसकी चर्बी चमकती थी और उसके बाल आग जैसी, बिल्कुल सुनहरी झलक देते थे। इसी घोड़े पर सवार होकर वाख़्तीगुल जवानों को धावे के लिए ले जाता था... ओह, कैसी तेज चालवाला है यह घोड़ा! ओह, कैसा बाका घुड़सवार है वह!

एकदम उसके पीछे हो जाती, बार-बार उसके बिलकुल पास आ जाती, मजाक करती, उसे हंसाती और ख़ुद भी शरारती ढंग से हंस देती। जाहिर था कि वे बहुत ही रंग में थी।

अचानक झुरझुरी के अदृश्य बर्फ़ीले हाथों ने वाख़्तीगुल को जकड़ लिया। बन्दूक हिल गई, निशाना साधना सम्भव नहीं रहा।

तब वाख़्तीगुल ने फिर से ओजर की ओर देखा... उसी क्षण उसके हाथों की कंपकपी गायब हो गई। सफेद सिर ने अपने ऊपर से बादलों की पगड़ी उतार दी और वह बड़ी शान से सिर से कंधों तक चमक उठा। वाख़्तीगुल को मानो अपने कर्तव्य-पालन का आदेश मिला। वहां ऊंचाई पर शायद इस समय पागलों की तरह सीत्कार करती हुई हवा मनमानी कर रही होगी, तालगार नदी की भाति जोरदार पद-प्रहार कर रही है। मानो इस हवा के सुर में सुर मिलाकर वाख़्तीगुल ने जोर की हुंकार भरी और पुरानी तथा भारी बन्दूक को कस कर पकड लिया।

घुड़सवारों का हंसता-चहकता दल पट्ट के ऊपर और काली-पथरीली दीवार की छाया में संकरी पगडंडी पर बढ़ा आ रहा था। दर्रे के निकट, पट्ट के बिलकुल किनारे पर नीचे की ओर झुकी हुई जंगली फलों की कुछ झाडियां उगी हुई थीं जिन में पके हुए, रसीले और कराश-कराश की चट्टानों की तरह काले-काले फल लगे हुए थे। झाड़ियों के करीब पहुंचने पर हर घुड़सवार जीन से झुकता और काले-काले जंगली फलों को तोड़ लेता। केवल सुनहरे घोड़ेवाले

सवार ने ही हाथ नहीं बढ़ाया। लेकिन जब तक वह बड़ी शान से झाड़ियों के पास से गुज़रा, तब तक बाल्तीगुल ने अपनी बन्दूक कसकर थाम ली थी और उसकी ओर निशाना साध लिया था।

वह ख़ूबसूरत बाई के अपनी ओर मुंह करने की प्रतीक्षा कर रहा था।

पत्थरों पर बजते हुए घोड़ों के नाल ऊंची आवाज़ पैदा कर रहे थे। वे अधिकाधिक निकट आते जा रहे थे। और लीजिये, अब वे वहां आ गये जहा से रास्ता तीन एस्प वृक्षों की ओर मुड जाता था। बाल्तीगुल की आंखों के सामने शानदार भूरे घोड़े की टागें झलकी और उसके पीछे-पीछे था सुनहरा घोड़ा। वह बड़े इत्मीनान से, अपना सुनहरा सिर ऊपर उठाये और नज़ाकत से सधे-सधाये क़दम रखता हुआ बढ़ता जा रहा था। बाल्तीगुल को बाई के पीछे शॉल में लिपटी-लिपटाई एक जवान नारी की छोटी-सी आकृति दिखाई दी। स्पष्टत: यह तो दोसाई कुल की कालिश यानी जारासबाई की दूसरी बीवी थी जिसकी चुनावों की दौड़-धूप के समय ही बाई के साथ शादी तय हो चुकी थी। ख़ुशकिस्मत पति उसे अपने गांव ले जा रहा था।

"ठहरो! .. रुक जाओ..." बाल्तीगुल ने अपने-आप से कहा। इस समय गोली चलाना ठीक नहीं होगा, वह दोनों के तन के पार हो जायेगी। मुझे घुड़सवार के आगे झुकने तक इन्तज़ार करना चाहिये।

बेहद ख़ुश और ख़ूबसूरत बाई घोड़े के कान के ऊपर से

देखता हुआ अपनी ढग से सवारी हुई दाढ़ी पर हाथ फेर रहा था, उसी समय वाग़्तीगुल ने धीरे से खटका दवा दिया। *नीले ऊन और लोमड़ी की खालवाले* फर कोट में वहा एक वड़ा-सा सूराख हो गया, जिस जगह का उसने निशाना साधा था और सूराख के ऊपर नीले-नीले धुए का पारदर्शी लहरिया-सा वल खाने लगा। घोड़ा पिछाडी के वल खड़ा हो गया और घुड़सवार चादी से सजे हुए जीन से नीचे लुढक गया। उसके फर के कोट के छोर हवा मे लहरा उठे।

जीन से नीचे गिरते वाई को देखता हुआ वाग़्तीगुल अनचाहे ही उछलकर खड़ा हो गया। सन्नाटे में आये और डरे हुए घोड़ों को मुश्किल से वश मे कर पाते हुए वाई के साथियों ने भी उसे गिरते देखा।

इसके वाद वाख़्तीगुल एस्प वृक्षों के पीछे सिर चकरा *देनेवाली ढाल पर लाल चट्टानो के उभारों को बकरे की* भाति फादता हुआ भाग चला। अपने पीछे उसने हवा को चीरती हुई कालिश की चीख़ सुनी:

"हाय, वाई! .. वाग़्तीगुल।"

वाग़्तीगुल सिहरा, झुका और पीछे की ओर मुड़कर देखे विना जगल की ओर भाग गया।

शाम होते-होते वाग़्तीगुल कराश-कराश से वहुत दूर चला गया था, मगर उसका दिल उसी भांति जोर से धक-धक कर रहा था जैसे कि तीन एस्पों के पास। बुखार की सी हरारत बनी रही। वेशक ठड नही थी, फिर भी उसे बार-बार जोरदार झुरझुरी महसूस होती थी।

झुटपुटा होने पर एक अपरिचित शिकारी से उसकी मुलाकात हुई। पहाड़ी बकरा जिसका उसने शिकार किया था, उसके घोडे पर लदा हुआ था। वाख्तीगुल ने उसे आवाज देकर रोका, उसके शिकार को देखा और निर्दयी वक्र मुस्कान के साथ कहा :

"आज मैंने भी एक पहाड़ी बकरे का शिकार किया है..."

१०

वाख़्तीगुल जेल में था।

वह जीवित था, सांस लेता था, चलता-फिरता था, बातचीत करता था, मगर यह समझ पाना कठिन था कि वह कैसे जिन्दा बच गया, शरीर में अपनी आत्मा को कैसे बनाये रख पाया।

कराश-कराश के हत्याकाण्ड के बाद जारासबाई के सम्बन्धियों ने पूरे जानिस कुल में सरगर्मी ला दी। शहर के अधिकारियों ने उनकी मदद के लिए एक बड़ा पुलिस अफ़सर भेज दिया। वाख़्तीगुल का अपने जन्म-स्थान से दूर भागने को मन नही हुआ, वह तो दूसरे प्रदेश में भी नही गया। उसे गिरफ़्तार कर लिया गया।

छोटे-से सार कुल के ग़रीब लोग जिस जगह रहते थे, ताकतवर जानिस कुल के लोगों ने वहां की ईंट से ईंट बजा दी, वहां केवल धूल ही धूल बाकी रह गई। जानिस ने सार कुल के लोगों की मामूली-सी जमा-पूजी भी ...

यहा तक कि फटी-पुरानी ग्रौर गन्दी दरियां तक भी नही छोड़ी, पूरी तरह से कंगाल कर दिया ग्रौर बच्चों तथा बूढ़ों समेत उन्हे बुर्गन ग्रौर चेल्कार से निकाल दिया। हातशा ग्रौर उसके बच्चो को दर-दर की भीख मांगने के लायक बना-कर छोड़ दिया गया।

वाख्तीगुल ग्रब नये, शहरी मुकदमे, रूसी काजियों के निर्णय का इन्तजार करने लगा।

हातशा नगर के एक ग्रमीर काजी के घर में नौकरानी हो गई। जाहिर है कि वह बच्चों के साथ बहुत ही खस्ताहाल जिंदगी बिताती थी · उसे चारो में ग्रपनी रोजी-रोटी बांटनी होती थी...

ठीक मौका देखकर बाख्तीगुल ने बड़े जेलर के पैर जा पकड़े। कुछ दिन बाद दरवाजा खुला ग्रौर जेल की गुफा जैसी ग्रधेरी कोठरी में सेइत ग्राया!

लड़का जेल में ही रहने लगा।

मिलनसार, चिन्तनशील ग्रौर मितभाषी सेइत सभी क़ैदियों—कज़ाखों ग्रौर रूसियों—को पसन्द ग्राया। उन में से बहुत-से उसे ग्रपनी रोटी का कुछ हिस्सा खिला देते। बाख्तीगुल जब यह देखता तो उसका दिल टीस उठता।

जेल में बाख्तीगुल का साथवाला तख्ता ग्रफानासी फ़ेदोतिच का था। ग्रफानासी फेदोतिच ने कहीं से किताब हासिल की, ग्रपने पैसों से पेंसिल ग्रौर चौखाने कागज खरीदे ग्रौर सेइत को मुल्ला जुनूस की भांति लिखना-पढ़ना सिखाने लगा। बाख्तीगुल यह सब श्रद्धा से देखता।



सेइत उखड़ी-उखड़ी नींद सोता, नींद में चीख कर ऊंची आवाज में बड़बड़ाता और आंसुओं से तर आंखें लिये जागता। वह रातों को चौंककर उठता, कुछ अस्पष्ट-सा चीखता और उनींदी तथा बहकी-बहकी नजरों से सीखचोंवाली खिड़की के बाहर चांदनी को देखता हुआ मानो यह समझने की कोशिश करता कि रोने में खिड़की कहां से आ गई... कभी कभी वह दिन के समय गुमसुम बैठा हुआ जेल की रोटी चबाता होता और उसके गालों पर जौ के दानों के समान आंसुओं की मोटी-मोटी और पीली-पीली बूंदें लुढ़कती दिखाई देतीं।

लड़के ने अपनी आंखों से यह देखा था कि कैसे उसके जाड़े के झोंपड़े के करीब जागीर कुल के लोगों ने उसके बाप, पकड़ में न आनेवाले सालाभार को पकड़ा था!

सेइत मां की बांहों में बुरी तरह छटपटाता रहा था जो उसे पूरे जोर से पकड़े हुए गला फाड़ फाड़कर चिल्ला रही थी:

"ओ बदकिस्मत, देख तो ये तेरे बाप को मारे डाल रहे हैं, ओ बदकिस्मत!"

अब जेल की काली कोठरी में भी लड़के की आंखों के सामने वही तसवीर घूमती रहती—सोटे, कोड़े, घूंसे और बूटों की ठोकरें... वह इसे देखता और मां की बांहों में छटपटाता. .

वाग़ीगुल बेटे को न तो सहलाता और न ही बातें की कोशिश करता। हां, कभी-कभी जब वह बहुत ही जोर से चीखने लगता तो उसे जगा देता।

पर एक दिन जब बाकी सभी लोग सो रहे थे और सेइत जागकर सोने के तख़्ते के आसपास घूम रहा था तो बाप ने उसे प्यार से अपने पास बुलाया :

"सेइतजान... बेटे, मेरे पास आओ तो..." उसने लड़के को अपने पास बिठाया और आंसू से भीगे हुए उसके गाल को सहलाया और बोला : "मैं बहुत दिनों से सोच रहा हूं और बहुत कुछ सोचता रहा हूं। जो कुछ मैंने सोचा है, वही तुम से कहता हूं। मेरे लाड़ले, तुम मेरे सबसे बड़े बेटे हो, इसीलिये मैं तुम से यह अनुरोध करता हूं कि तुम अपने इस चौख़ाने कागज़ पर ही नज़र गड़ाये रहा करो। अगर कोई तुम्हें इन्सान बना सकता है तो सिर्फ यह काग़ज़ ही! देखते हो न कि मेरा क्या हाल हुआ है। सो भी इसीलिये कि मैं पढ़ा-लिखा नहीं हूं।"

"तुम निर्दोष हो," सेइत जोश से फुसफुसाया। "यह उन्हीं ने... उन्हीं ने... तुम्हें!.. मुझे सब कुछ मालूम है!"

"सब कुछ नहीं, मेरे लाल! पढ़-लिख जायेगा तो बाइयों और काजियों की उनकी हक़ीक़त बता देगा। वे तेरा, मेरे जैसा हाल नहीं कर पायेंगे... तेरी आंखें खुल जायेंगी और तू दूसरों की आंखें खोल देगा। यह मेरे बस की बात नहीं, मगर तू ऐसा कर सकता है, तुझे ऐसा करना चाहिये! इस चौख़ाने कागज़ में अपनी सारी शक्ति लगा दे... इस से अधिक तुझे कहने को मेरे पास कुछ भी नहीं है। न मेरे पास दिमाग़ है और न तालीम ही जो मैं तुझे दे सकूं।"

वाह्लीगुल के पीले गाल पर आंसू की एक बूंद ढलक आई। उसने उसे पोंछा और सेइत को दूर हटा दिया।

"अब जा, अपने कागज़ों में मन लगा।"

इस वातचीत के बाद सेइत ने नींद में रोना और चीख़ना-चिल्लाना बन्द कर दिया।

अफ़ानासी फ़्रेदोतिच बड़ा खुशमिज़ाज आदमी था, कभी उदास नहीं होता था। वह सेइत का हाथ पकड़ कर उसे हर दिन सूखी घास से ढके जेल के अहाते में घुमाने के लिए ले जाता और वहां उसके साथ दौड़ने की होड़ करता।

उसी के साथ मिल कर सेइत अपने बाप और अन्य लोगों के लिए चाय का पानी उबालता। बाप को चाय पीना बहुत पसन्द था।

एक दिन रूसी ने अपनी नीली आख झपकाते हुए लड़के से पूछा :

"किस सोच में डूबे हो प्यारे सेइत? बाहर वसन्त आ गया... शायद गाव की याद सता रही है? आज़ादी से घूमना-फिरना चाहते हो? अरे, चुप क्यों हो?"

लड़के ने उदासी से सिर हिला दिया।

"नहीं, अफ़ानासी चाचा... मन नहीं करता..."

"झूठ क्यों बोलते हो? ऐसा नहीं हो सकता।"

"यहां ज्यादा अच्छा है, अफ़ानासी चाचा... यहां ज्यादा अच्छा है..."

वाख़्लीगुल दीवार की ओर मुंह किये हुए लेटा था, अपनी कुछ-कुछ पकी हुई मूंछों को काट रहा था, गले को हाथ से दवा रहा था।

"मेरे नन्हे, मेरे प्यारे... मेरी आंखों के तारे..." वह बेटे के बारे में सोच रहा था।

अफानासी फेदोतिच ने लडके को हाथों में उठा लिया, उसे अपनी छाती से चिपका लिया। लड़के ने छूटने की कोशिश नही की।

"सुनते हो न भाइयो, क्या वह रहा है यह लडका? ओह सेइत, प्यारे सेइत! .. कसम ख़ुदा की, इन शब्दो से तुमने मेरी जान निकाल ली... जानते हो कि सब से भयानक बात क्या है? वह यह कि उसने किताबों से नही सीखे हैं ये शब्द!" अफानासी सेइत को छाती से लगाये हुए कोठरी में इधर-उधर घूमने लगा।

इसी तरह वे जेल में रहते गये, दिन बीतते गये और राते गुजरती गई।

शान्त, मन लगाकर पढनेवाले और समझदार सावले बालक ने ढेरों ढेर कागज काले कर डाले। अफ़ानासी चाचा उसे लिखना, मुस्कराना और वह कुछ देखना सिखाता था जो उसका बाप नही देख पाया था – भावी जीवन का आलोक।

और बाख़्तोगुल इन्तजार कर रहा था। वह इन्तजार कर रहा था मुकदमे का, निर्वासन का...



पाठकों से

प्रगति प्रकाशन इस पुस्तक की विषय-वस्तु, अनुवाद और डिजाइन के बारे मे आपके विचार जानकर अनुगृहीत होगा। आपके अन्य सुझाव प्राप्त करके भी हमे बड़ी प्रसन्नता होगी। कृपया हमे इस पते पर लिखिये:

प्रगति प्रकाशन,
२१, जूबोव्स्की बुल्वार,
मास्को, सोवियत संघ।

प्रगति प्रकाशन, मास्को की नयी हिंदी पुस्तकें

वसील बीकोव, प्यार और पत्थर

वसील बीकोव एक युवा बेलोरूसी लेखक हैं। उनका यह नया उपन्यास १९४१–१९४५ के जर्मन नात्सीवादविरोधी युद्ध की मर्मस्पर्शी घटनाओं पर आधारित है। इसके मुख्य पात्र – नौजवान सोवियत सैनिक इवान तेरेश्का और इतालवी तरुणी जूलिआ नोवेल्ली – आस्ट्रियाई आल्प पर्वतश्रेणियों में एक नात्सी बंदी शिविर में कैद हैं। उनके प्रेम की यह नाटकीय गाथा ऐसे साहस से ओतप्रोत है, जिसे नात्सी शिविर की यातनाएं भी नहीं तोड़ पाईं।

आकार. १११×१७ सें० मी० पृष्ठ संख्या: १६५

अर्कादी गैदार, चूक और गेक

'चूक और गेक' लेखक की सबसे प्रसिद्ध कृतियों में एक है। इसकी लोकप्रियता का प्रमाण यह है कि इसका फिल्मीकरण और ६० भाषाओं में अनुवाद हो चुका है।

चूक और गेक नाम के दो बालक मास्को से अपनी मां के साथ रेलगाड़ी में बैठकर सुदूर साइबेरिया में अपने भूविज्ञ पिता के पास जा रहे हैं। यात्रा में बालकों के आगे एक नया, विशाल और अद्भुत संसार उद्घाटित होता है। गैदार बड़े हृदयस्पर्शी और मनोरंजक ढंग से इस यात्रा का, बच्चों

की अपने पिता से भेंट का और उनकी शरारतों का वर्णन करते हैं।

पुस्तक में प्रसिद्ध चित्रकार द० दुवीन्स्की के बनाये चित्र हैं। आकार : १७ × २२ सें० मी० कपड़े की पक्की जिल्द पृ० सं० :७१

हीरे-मोती, सोवियत संघ की लोककथाएं

कहावत है: "गीतों से किसी जाति के दिल का पता चलता है और लोककथाओं से उसकी आशाओं का"। इस पुस्तक में सोवियत संघ में रहनेवाली जातियों की सर्वश्रेष्ठ कथाओं में से कोई चालीस दी गई हैं—रूसी परी कथाएं, व्यंग्यपूर्ण उक्राइनी कहानियां, सोवियत पूर्व की जातियों की रंगीन कथाएं और उत्तर की जातियों की मनोरम लोककथाएं।

पुस्तक में व्लादीमिर मीनायेव के बनाये अनेक चित्र हैं, जिनमें से दस रंगीन हैं।

आकार : १७ × २२ सें० मी० पृ० सं० २५५